

[2009] 12 एस.सी.आर. 929

मेसर्स भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड

बनाम

एस.यू.टी.एन.आई. संगम और अन्य

(2006 की दीवानी अपील सं. 3874 आदि)

जुलाई 29, 2009

[एस. बी. सिन्हा और साइरियाक जोसेफ, न्यायमूर्तिगण]

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894:

धारा 18, धारा 31 का द्वितीय परंतुक तथा धारा 50(2) भूमि का अधिग्रहण प्रतिकर विभिन्न पंचाटधारकों द्वारा प्रतिकर राशि का विरोध सहित तथा बिना विरोध के स्वीकार किया जाना प्रतिकर राशि में वृद्धि हेतु संदर्भ की मांग संदर्भ न्यायालय ने उन पंचाटधारकों के मामलों को स्वीकार कर लिया जिन्होंने प्रतिकर राशि विरोध के साथ प्राप्त की थी जिन पंचाटधारकों ने प्रतिकर राशि बिना किसी विरोध के स्वीकार कर ली थी, तथा जिनके संदर्भ आवेदन विधि द्वारा निर्धारित अवधि के पश्चात् दायर किए गए थे, उनके संदर्भों को अस्वीकार कर दिया गया भूमिधारकों के संघ द्वारा दायर रिट याचिका उच्च न्यायालय ने अधिकारियों को संदर्भ की प्रक्रिया पूर्ण करने का निर्देश दिया अपील पर अभिनिर्धारित: जिन पंचाटधारकों ने बिना किसी विरोध के प्रतिकर प्राप्त किया, वे संदर्भ के हकदार नहीं हैं धारा 9 के नोटिस के उत्तर में की गई आपत्ति का वही प्रभाव नहीं हो सकता जैसा कि धारा 18 के अंतर्गत आवेदन दायर किए जाने का होता है जब कोई अधिनियम परिसीमा का प्रावधान करता है, तो उसका अनुपालन अनिवार्य होता है जिन पंचाटधारकों के आवेदन विलंब से दायर किए गए थे, उनके मामलों को संदर्भित करने का निर्देश देना अनुमेय नहीं था परिसीमा अधिनियम, 1963 धारा 51

भूमि का अधिग्रहण उच्च न्यायालय के निर्देश पर संदर्भ किया गया राज्य तथा वह पक्ष, जिसके लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था, ने संदर्भ कार्यवाही में कोई आपत्ति नहीं उठाई अभिनिर्धारित: वे संदर्भ को चुनौती देने से विवर्जित हैं।

विधियों की व्याख्या किसी अधिनियम को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए यदि न्यायालय द्वारा अपनाए गए वैधानिक व्याख्या के सिद्धांतों से किसी प्रावधान का न्यायसंगत अर्थ निकलता है, तो वह उद्देश्यपरक व्याख्या के सिद्धांत को लागू करने की शर्तों को पूरा करेगा।

सिद्धांत/नियम:

उद्देश्यपरक व्याख्या के सिद्धांत प्रयोज्यता।

जब कोई अधिनियम किसी कार्य को किसी विशेष विधि से किए जाने का प्रावधान करता है तो वह प्रावधान केवल वैधानिक प्राधिकरण पर ही लागू होता है।

अपीलकर्ता-प्राधिकरण तथा अपीलकर्ता-हाउसिंग बोर्ड की मांग पर भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही प्रारम्भ की गई। प्राधिकरण के लिए किए गए भूमि अधिग्रहण के संबंध में कुछ भू-स्वामियों ने प्रतिकर की राशि बिना विरोध के स्वीकार कर ली, जबकि कुछ ने उसे विरोध सहित स्वीकार किया। भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत मामलों को भूमि अधिग्रहण न्यायालय को संदर्भित किए जाने हेतु आवेदन दायर किए गए। संदर्भ न्यायालय ने उन पंचाटधारकों को, जिन्होंने प्रतिकर की राशि विरोध सहित स्वीकार की थी, बड़ी हुई प्रतिकर राशि प्रदान की। संदर्भ न्यायालय ने उन व्यक्तियों के संदर्भ आवेदन अस्वीकार कर दिए, जिन्होंने प्रतिकर राशि बिना किसी विरोध के स्वीकार की थी। कुछ पंचाटधारकों ने निर्धारित परिसीमा समाप्त होने के बाद संदर्भ आवेदन दायर किए। उनके आवेदन भी संदर्भ न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए गए। कुछ भू-स्वामियों ने अपने विधिक अधिकारों की रक्षा हेतु एक संघ का गठन किया। उक्त संघ ने एक रिट याचिका दायर की, जिसे उच्च न्यायालय ने स्वीकार करते हुए संबंधित प्राधिकारियों को संदर्भ की प्रक्रिया पूर्ण करने का निर्देश दिया।

अंतःन्यायालयीय अपीलें भी खारिज कर दी गईं। इसी कारण वर्तमान अपीलें दायर की गई हैं।

हाउसिंग बोर्ड के लिए किए गए भूमि अधिग्रहण के मामले में, भू-स्वामी ने अधिग्रहित भूमि के बाजार मूल्य के निर्धारण के समय प्रतिकर की राशि से अपनी असंतुष्टि व्यक्त करते हुए एक बयान दिया। उसने यह भी कहा कि वह प्रतिकर की राशि विरोध सहित प्राप्त करेगा। समाहर्ता द्वारा स्वतः से कोई संदर्भ नहीं किया गया। संदर्भ किए जाने हेतु अभ्यावेदन प्रस्तुत किए गए। संदर्भ की मांग करते हुए रिट याचिका दायर किए जाने के पश्चात राज्य ने कुछ मामलों में संदर्भ कर दिया, जिसे अपीलकर्ता-बोर्ड ने चुनौती नहीं दी। शेष मामलों में संदर्भ किए जाने के लिए दिए गए अभ्यावेदन इस आधार पर अस्वीकार कर दिए गए कि वे परिसीमा से बाधित थे। तत्पश्चात संदर्भ करने का निर्देश देने हेतु एक अन्य रिट याचिका दायर की गई, जिसे उच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया। राज्य ने संदर्भ आदेश की संधार्यता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई। संदर्भ न्यायालय ने प्रतिकर की राशि में वृद्धि कर दी। अपीलकर्ता-बोर्ड द्वारा दायर अपीलें खारिज कर दी गईं। उक्त निर्णय को अंतःन्यायालयीय अपील में भी बरकरार रखा गया। फलतः वर्तमान अपीलें दायर की गईं।

अपीलकर्ता-प्राधिकरण द्वारा दायर अपीलों को स्वीकार करते हुए तथा अपीलकर्ता-बोर्ड द्वारा दायर अपीलों को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने कहा,

अभिनिर्धारित: 1.1. भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के प्रावधानों को उनकी संपूर्णता में पढ़ा जाना चाहिए। अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या और उनके अनुप्रयोग के उद्देश्य से समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना आवश्यक है और ऐसा करने पर इसके प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 300ए की कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह अधिनियम एक न्यायसंगत प्रक्रिया प्रदान करता है। संसद को अपनी बुद्धिमत्ता के अनुसार किसी अन्य अथवा अतिरिक्त राहत के आवेदन हेतु शर्तें निर्धारित करने का अधिकार है। ऐसा करते समय वह उसके लिए प्रक्रिया भी निर्धारित कर सकती है। यद्यपि ऐसी प्रक्रिया उसकी संवैधानिक वैधता के परीक्षण

हेतु निष्पक्षता और युक्तिसंगतता की कसौटी पर खरी उतरती है, तथापि सामान्यतः उन प्रावधानों को जिस प्रकार और जिस रीति से लागू किया जाना अपेक्षित है, उसका पालन किया जाना चाहिए। हालाँकि, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अधिनियम की व्याख्या के अनुसार उसमें निर्धारित प्रक्रिया को अनिवार्य माना जाएगा या निर्देशात्मक। अधिनियम की योजना से स्पष्ट है कि प्रतिकर की राशि निर्धारित करने की प्रक्रिया कई चरणों में सम्पन्न होती है, अर्थात् हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस देना; पंचाट पारित करना; ऐसा करने के लिए निर्धारित अवधि; तथा स्वयं पंचाट का प्रकाशन। [कंडिका 40] [954-डी-एच; 955-ए-सी]

1.2. अधिनियम की धारा 18 को धारा 31 के साथ संलग्न परंतुकों के साथ पढ़ा जाना आवश्यक है। हितबद्ध व्यक्ति धारा 18 में विनिर्दिष्ट किसी एक या अन्य आधार पर पंचाट की शुद्धता अथवा वैधता को चुनौती दे सकता है। वह प्रतिकर की राशि के भुगतान तथा/अथवा उसके स्वीकार किए जाने के प्रयोजन से भी धारा 31 के साथ संलग्न परंतुकों द्वारा शासित होगा। तथापि, अधिनियम की धारा 31 हितबद्ध व्यक्ति को पंचाट को विरोध सहित स्वीकार करने का अधिकार प्रदान करती है। किंतु पंचाट को विरोध सहित स्वीकार करने का यह अधिकार धारा 18 की उपधारा (2) तथा धारा 31 की उपधारा (2) के साथ संलग्न परंतुकों में निर्धारित शर्तों से सीमित है। अतः उक्त परंतुक हितबद्ध व्यक्तियों के अधिकारों को सीमित करते हैं। इसलिए प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार, जब उससे संबद्ध शर्तों द्वारा सीमित किया गया है, तो सामान्यतः उन शर्तों को अनिवार्य प्रकृति का माना जाना चाहिए। [कंडिका 45 और 46]

1.3. विधि यह परिकल्पना नहीं करती कि पंचाट पारित होने से पूर्व ही कोई सामान्य अथवा अस्पष्ट आपत्ति समाहर्ता द्वारा विचारार्थ स्वीकार की जा सकती है। इसलिए पंचाट के विरुद्ध आपत्ति विशिष्ट होनी चाहिए। जब कोई संदर्भ किया जाता है, तो न्यायालय सामान्यतः संदर्भ की शर्तों से बंधा होता है। संदर्भ न्यायालय के पास पूर्ण अधिकारिता नहीं होती। उसके

पास ऐसा कोई मूल अधिकार क्षेत्र नहीं है कि वह सीधे समाहर्ता या भू-स्वामियों से आवेदन स्वीकार कर सके। [कंडिका 44] [955-एच; 956-ए-बी]

1.4. जब कोई अधिनियम परिसीमा का प्रावधान करता है, तो उसका पालन करना अनिवार्य होता है। तथापि, परिसीमा संबंधी विधि को लागू करते समय न्यायालयों को अपने दृष्टिकोण में उदार होना चाहिए। अधिनियम की धारा 18(2)(बी) समाहर्ता के पंचाट की तिथि से अधिकतम छह माह की अवधि का प्रावधान करती है। इसलिए, विशेषकर उस स्थिति में जब परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 को लागू नहीं माना जा सकता, लंबे समय के पश्चात संदर्भ किए जाने का निर्देश देना अनुमेय नहीं था। [कंडिका 47 और 48] [956-जी-एच; 957-ए-बी]।

विशेष कर्तव्य समाहर्ता (भूमि अधिग्रहण) और एक अन्य बनाम शाह मनीलाल चंदूलाल और अन्य 1996 (9) एससीसी 414; कर्नाटक राज्य बनाम लक्ष्मण 2005 (8) एससीसी 709, अवलंबित।

मिर्जा मजीद हुसैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य (1995) 2 एससीसी 422, संदर्भित।

1.5. अधिनियम की धारा 18 के प्रयोजनार्थ "हितबद्ध व्यक्ति" अभिव्यक्ति को सीमित अर्थ दिया जा सकता है। राज्य हितबद्ध व्यक्ति नहीं है। जिस कंपनी या स्थानीय प्राधिकरण के लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया हो, वह अधिनियम की धारा 50 की उपधारा (2) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, संदर्भ के लिए कोई आवेदन दायर करने का समाहर्ता नहीं है। [कंडिका 55] [961-ए-बी]

1.6. अतः संघ अपने सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हुए रिट याचिका दायर कर सकता था, किन्तु शब्दशः वह अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ के लिए कोई आवेदन दायर नहीं कर सकता था। ऐसा आवेदन करने के लिए, निस्संदेह, उसमें निर्धारित

परिसीमा का पालन किया जाना आवश्यक है। तथापि, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि परिसीमा संबंधी विधि की कठोर व्याख्या की जानी चाहिए। [कंडिका 57] [961-डी-ई]

कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम केएसआरटीसी स्टाफ और वर्कर्स फेडरेशन और अन्य (1999) 2 एससीसी 687, अवलंबित।

1.7. भूमि अधिग्रहण के मामले में, व्यक्तियों के किसी समूह का किसी संघ द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। अधिनियम भू-स्वामियों द्वारा दावा आवेदन दायर किए जाने तथा आपत्तियाँ प्रस्तुत किए जाने का प्रावधान करता है, न कि किसी संघ द्वारा अथवा उसके माध्यम से, और वह भी ऐसे संघ द्वारा जो एक स्वतंत्र निगमित निकाय हो। [कंडिका 59] [962-जी]

1.8. भूमि के स्वामी को न्यायोचित प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा द्वारा 10 दिसम्बर, 2008 को घोषित न्याय तक पहुँच के उसके मानवाधिकार को ध्यान में रखते हुए, उसे संदर्भ प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को संदर्भ प्राप्त करने का अवसर तभी मिल सकता है जब उसे पंचाट पारित किए जाने की सूचना हो। [कंडिका 60] [962-एच; 963-ए]

1.9. प्रलक्षित ज्ञान भी अधिनियम के उद्देश्य की पूर्ति करेगा। किसी व्यक्ति को किसी दस्तावेज़ की विषयवस्तु का वास्तविक अथवा प्रलक्षित ज्ञान था या नहीं, यह मूलतः तथ्य का प्रश्न है। यह सिद्ध करने का भार भू-स्वामी पर होगा कि उसे पंचाट की विषयवस्तु का कोई ज्ञान नहीं था। जिस मामले में सूचना से वाद का कारण उत्पन्न होता है, वहाँ ऐसी सूचना को अनिवार्य प्रकृति का माना जाना चाहिए। [कंडिका 66 और 67] [964-जी-एच; 965-ए]

राजा हरीश चंद्र राज सिंह बनाम उप भूमि अधिग्रहण समाहर्ता और अन्य (1962) 1 एससीआर 676; *पंजाब राज्य बनाम श्रीमती कैसरजहाँ बेगम और एक अन्य* (1964) 1 एससीआर 971, अवलंबित।

पंजाब राज्य बनाम अमर सिंह हरिका (एआईआर 1966 एससी 1313); पंजाब राज्य बनाम खेमी राम (1969) 3 एससीसी 28; भूमि अधिग्रहण समाहर्ता बनाम शिवबाई और अन्य (1997) 9 एससीसी 710; परसोतमभाई मगनभाई पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य उप समाहर्ता मोडासा और एक अन्य के माध्यम से (2005) 7 एससीसी 431 संदर्भित।

1.10. राज्य ने एक अधिसूचना जारी कर समाहर्ता को अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने का निर्देश दिया। अतः ऐसी अधिसूचना को प्रलक्षित ज्ञान माना जाएगा। इसलिए भू-स्वामियों के लिए यह अनिवार्य था कि वे निर्धारित अवधि के भीतर उचित आवेदन प्रस्तुत करें। [कंडिका 71] [966-डी-ई]

1.11. तथापि, राज्य ने उक्त अधिसूचना के संबंध में यह स्पष्ट किया कि उसकी पूर्ववर्ती अधिसूचना का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित वैधानिक परिसीमा को पूर्णतः नज़रअंदाज़ कर दिया जाए। [कंडिका 72] [966-ई-एफ]

1.12. वर्ष 1981 में तमिलनाडु राज्य द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसरण में अथवा उसके क्रियान्वयन में कोई संदर्भ नहीं किया गया, क्योंकि पंचाट मुख्यतः वर्ष 1972 से 1974 के बीच पारित किए गए थे। [कंडिका 73] [966-एफ-जी]

1.13. जिन्होंने धारा 31 के साथ संलग्न द्वितीय परंतुक को ध्यान में रखते हुए बिना किसी विरोध के प्रतिकर प्राप्त कर लिया, उनके बारे में यह माना जाना चाहिए कि उन्होंने प्रतिकर के संबंध में किसी प्रकार का कोई आरक्षण व्यक्त नहीं किया था। [कंडिका 76] [967-डी-ई]

1.14. तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि आपत्तियाँ मुद्रित प्रपत्रों में दायर की गई थीं, जिनमें यह कहा गया था कि सभी पंचाट आपत्ति के अधीन होंगे तथा भुगतान विरोध सहित प्राप्त किया जाएगा। किन्तु अधिनियम की धारा 9 के नोटिस के उत्तर में ऐसी आपत्ति उठाने का वही प्रभाव नहीं हो सकता, जैसा कि अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ के लिए आवेदन दायर किए जाने का होता है। [कंडिका 77] [967-ई-एफ]।

1.15. किसी अधिनियम को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और उसके बाद अध्याय-दर-अध्याय, धारा-दर-धारा तथा फिर शब्द-दर-शब्द उसका अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए अधिनियम की योजना पर ध्यान देना आवश्यक है। यदि न्यायालय द्वारा अपनाए गए वैधानिक व्याख्या के सिद्धांतों से किसी प्रावधान का न्यायसंगत अर्थ निकलता है, तो वह उद्देश्यपरक व्याख्या के सिद्धांत को लागू करने की शर्तों को पूरा करेगा। [कंडिका 79] [968-ए-बी]

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नुस्ली नेविल वाडिया (2008) 3 एससीसी 279; *चेयरमैन, इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम प्योर इंडस्ट्रियल कोक एंड केमिकल्स लिमिटेड* (2007) 8 एससीसी 705, संदर्भित।

1.16. न्यायालय यह विधि स्थापित करना नहीं चाहता कि पंचाट किए जाने के संबंध में विरोध केवल उसी तरीके से किया जाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से निर्धारित हो। जब संदर्भ के लिए आवेदन दायर किया जाता है, तो पंचाट के प्रति विरोध निहित माना जाता है। [कंडिका 82] [969-ई]

अजीत सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1994) 4 एससीसी 67 अवलंबित।

आर. बनाम मेडिकल अपील न्यायाधिकरण (1957) 1 क्यूबी 574, 583 संदर्भित।

1.17. भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत असाधारण अधिकारिता के प्रयोग का कोई मामला स्थापित नहीं किया गया है। [कंडिका 86] [971-डी]

एच.एम. केलोगिराव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य (1997) 7 एससीसी 722; *ओडिशा औद्योगिक अवसंरचना विकास निगम बनाम सुपाई मुंडा और अन्य* (2004) 12 एससीसी 306, प्रतिष्ठित।

सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ और एक अन्य (1998) 4 एससीसी 409; *विनय चंद्र मिश्रा, री* (1995) 2 एससीसी 584; *जयचंद्र मोहपात्रा बनाम*

भूमि अधिग्रहण समाहर्ता, रायगड़ा (2005) 9 एससीसी 123; भारत संघ बनाम प्रमोद गुसा (मृत) उनके कानूनी वारिसों द्वारा और अन्य (2005) 12 एससीसी 1; भारत संघ बनाम प्रमोद गुसा (मृत) उनके कानूनी वारिसों द्वारा तमिलनाडु इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम स्टेटस स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड (2008) 7 एससीसी 353, संदर्भित।

2.1. तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड द्वारा प्रस्तुत अपीलें, तथापि, भिन्न आधार पर आधारित हैं। उसमें एकल न्यायाधीश द्वारा उच्च न्यायालय की रिट याचिका स्वीकार कर ली गई थी। उसके अनुसरण में अथवा उसके क्रियान्वयन में संदर्भ किया गया। एक तथ्यात्मक निष्कर्ष भी दर्ज किया गया था। संदर्भ के लिए दीवानी न्यायालय में जाने का अनुरोध भी किया गया था। भूमि अधिग्रहण समाहर्ता ने उन्हें आश्वासन दिया कि संदर्भ किया जाएगा। किंतु, वह वादा पूरा नहीं किया गया। ऐसी परिस्थिति में रिट याचिका दायर की गई। [कंडिका 92] [975-बी-सी]

2.2. एकल न्यायाधीश के निर्णय पर कार्यवाही की गई और हाउसिंग बोर्ड ने बिना किसी आपत्ति के कार्यवाही में भाग लिया, अतः उन्हें अब यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि कार्यवाही अवैध थी। उन्होंने न केवल कार्यवाही में भाग लिया, बल्कि प्रतिकर की मात्रा के संबंध में साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण को भी चुनौती दी तथा संदर्भ न्यायाधीश के निर्णय एवं पंचाट के विरुद्ध अपील भी दायर की। उक्त कार्यवाही अंतिम रूप प्राप्त कर चुकी है, अतः उनके द्वारा दायर रिट अपीलें स्वीकार नहीं की जानी चाहिए थीं। [कंडिका 93] [975-डी-ई]

2.3. इस तरह के मामले में, अभिलेख पर राज्य और/या अपीलकर्ता द्वारा कोई सामग्री प्रस्तुत न किए जाने के कारण यह मान लिया गया है कि भूमि अधिग्रहण समाहर्ता अधिनियम की धारा 3(सी) के अर्थ में समाहर्ता है। अतः वह अपने वचन से बाध्य था। [कंडिका 94] [975-एफ]

2.4. उपर्युक्त परिस्थिति में यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ किसी उच्च प्राधिकारी द्वारा किसी वैधानिक प्राधिकारी को उसके अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किसी विशेष रीति से करने के

लिए निर्देश दिया गया हो। अधिनियम में विरोध का कोई निर्धारित प्रारूप नहीं है। लिखित आवेदन का भी कोई निर्धारित प्रारूप निर्दिष्ट नहीं किया गया है। किसी विशेष मामले में, अधिनियम के उद्देश्य एवं प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, संदर्भ करने की शक्ति रखने वाला समाहर्ता एक वैधानिक प्राधिकारी होने के नाते संदर्भ करने के अधिकार का त्याग कर सकता है। यदि संदर्भ पंचाटधारियों के अनुरोध पर किया गया है, तो उसे केवल इस आधार पर पूर्णतः अवैध या अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं माना जा सकता कि प्रतिकर की राशि के संबंध में विरोध मौखिक है और लिखित नहीं है। विरोध का स्वरूप, तरीका और ढंग प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं। अधिनियम यह नहीं कहता कि किसी कार्य को केवल एक ही विशेष तरीके से किया जाना चाहिए। [कंडिका 95] [975-जी-एच; 976-ए-बी]

2.5. वह सिद्धांत कि जहाँ किसी विधि में किसी कार्य को एक निर्धारित तरीके से करने का प्रावधान हो, वहाँ उसे उसी तरीके से या बिल्कुल नहीं किया जा सकता, तब लागू होता है जब वैधानिक प्राधिकारी को अपने कार्यों का निर्वहन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार करना हो। यह सिद्धांत किसी वादकारी पर लागू करने के लिए नहीं है। प्रक्रिया न्याय की सहायक है। किसी विधिक अधिकार का प्रावधान करने वाला मूल कानून प्रक्रियात्मक पहलू पर प्राथमिकता रखता है। ऐसी स्थिति में, भूमि अधिग्रहण समाहर्ता को वचन-भंग निरोध के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अपने वचन को पूरा करने के लिए बाध्य माना जा सकता है। [कंडिका 96] [976-सी-ई]

मामला विधि संदर्भ:

(1957) 1 क्यूबी 574	संदर्भित	कंडिका 29
(1996) 9 एससीसी 414	अवलंबित	कंडिका 49
(2005) 8 एससीसी 109	अवलंबित	कंडिका 50
(1999) 2 एससीसी 687	अवलंबित	कंडिका 58
(1962) 1 एससीआर 676	अवलंबित	कंडिका 64

(1964) 1 एससीआर 971	अवलंबित	कंडिका 65
एआईआर 1966 एससी 1313	संदर्भित	कंडिका 67
(1969) 3 एससीसी 28	संदर्भित	कंडिका 68
(1997) 9 एससीसी 710	संदर्भित	कंडिका 69
(2005) 1 एससीसी 431	संदर्भित	कंडिका 70
(1995) 2 एससीसी 422	संदर्भित	कंडिका 75
(2008) 3 एससीसी 279	संदर्भित	कंडिका 80
(2007) 8 एससीसी 705	संदर्भित	कंडिका 81
(1994) 4 एससीसी 67	अवलंबित	कंडिका 82
(1998) 4 एससीसी 409	संदर्भित	कंडिका 84
(1995) 2 एससीसी 584	संदर्भित	कंडिका 84
(1997) 7 एससीसी 722	वैशिष्टता प्राप्त	कंडिका 85
(2004) 12 एससीसी 306	वैशिष्टता प्राप्त	कंडिका 87
(2005) 9 एससीसी 123	संदर्भित	कंडिका 89
(2005) 12 एससीसी 1	संदर्भित	कंडिका 90
(2008) 7 एससीसी 353	संदर्भित	कंडिका 91

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2006 की दीवानी अपील संख्या 3874।

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 1992 की रिट अपील संख्या 1073 में दिनांक 13.12.2005 को दिए गए निर्णय एवं आदेश से।

के साथ

2006 की सी.ए. संख्या 5763, 5764, 5765, 5766, 5767 तथा 2009 की 4793-

उपस्थित पक्षों के लिए रणजीत कुमार, एल.एन. राव, सुनील कुमार जैन, अजय भाटिया, अनीश मित्तल, सिद्धार्थ जैन, एस. थानंजयन, जयंथ मुथराज (सी.के. ससी के लिए), आर. नेदुमारन, प्रणब कुमार मुल्लिक आदि।

न्यायालय का निर्णय द्वारा सुनाया गया

एस.बी. सिन्हा, न्यायमूर्ति 1. दोनों विशेष अनुमति याचिका में अनुमति प्रदान की गई।

2. ये अपीलें समान विधिक एवं तथ्यात्मक प्रश्नों से संबंधित हैं, अतः इन्हें एक साथ सुनवाई हेतु लिया गया और इस सामान्य निर्णय द्वारा उनका निस्तारण किया जाता है।

3. मेसर्स इस्पात अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (जिसे आगे संक्षेप में 'सेल' कहा गया है) के अनुरोध पर, सेलम में एक इस्पात संयंत्र की स्थापना हेतु इसे आमतौर पर सेलम इस्पात संयंत्र के नाम से जाना जाता है, 3651 एकड़ भूमि का अधिग्रहण किया गया जिसके लिए भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना वर्ष 1964 में जारी की गई तथा धारा 6 के अंतर्गत घोषणा वर्ष 1969 में प्रकाशित की गई।

4. भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही एवं पंचाट तैयार करने की प्रक्रिया वर्ष 1971 में प्रारंभ हुई तथा यह प्रक्रिया 1971 से 1975 के बीच कुल 305 पंचाट पारित किए गए। बड़ी संख्या में भू-स्वामियों ने भूमि अधिग्रहण समाहर्ता द्वारा निर्धारित प्रतिकर राशि से संतुष्ट होकर उसे बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया।

5. कुछ भू-स्वामी, हालांकि, पंचाट पारित किए जाने के समय प्रतिकर राशि से असंतुष्ट थे और उन्होंने न केवल राशि को विरोध सहित स्वीकार किया बल्कि अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण न्यायालय को संदर्भ हेतु आवेदन भी प्रस्तुत किए, जिसके अनुसरण में दीवानी न्यायालय को संदर्भ भेजे गए। यह निर्विवाद है कि भूमि अधिग्रहण न्यायाधीश द्वारा निर्धारित बड़ी हुई प्रतिकर राशि का भुगतान भी कर दिया गया।

6. कुछ भू-स्वामियों ने ऐसे आवेदन भी प्रस्तुत किए, जिन्होंने प्रतिकर राशि को विरोध सहित स्वीकार नहीं किया था; ऐसे आवेदन भूमि अधिग्रहण समाहर्ता द्वारा अस्वीकार कर दिए गए। कुछ पंचाटधारकों ने निर्धारित अवधि समाप्त होने के बाद संदर्भ हेतु आवेदन प्रस्तुत किए, जिन्हें भी अस्वीकार कर दिया गया।

7. यह कहा गया है कि अधिकांश दावा याचिकाओं का निस्तारण वर्ष 1979 तक कर दिया गया था। कुछ भू-स्वामियों ने, तथापि, अपने विधिक अधिकारों की रक्षा हेतु एक संघ का गठन किया जिसे सुटनी संगम कहा गया (जिसे आगे संक्षेप में 'संघ' कहा गया है), जो उन कृषकों के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया था जिनकी भूमि का अधिग्रहण किया जाना था।

8. प्रतिकर में वृद्धि के उद्देश्य से मामलों के संदर्भ के लिए निर्देश देने वाले परिपत्र पत्र का सारांश इस प्रकार है:

“बिंदु ।

वे पंचाटधारक जिन्होंने प्रतिकर राशि विरोध सहित प्राप्त की और निर्धारित समयावधि समाप्त होने के बाद भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन प्रस्तुत किए।

बिंदु //

वे पंचाटधारक जिन्होंने प्रतिकर राशि बिना विरोध प्राप्त की, किन्तु धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन प्रस्तुत किए।

बिंदु ///

वे पंचाटधारक जिन्होंने प्रतिकर राशि बिना विरोध प्राप्त की तथा धारा 18 के अंतर्गत कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया।”

9. तथापि, दिनांक 5.1.1983 के आसपास एक स्पष्टीकरणात्मक आदेश उक्त प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया, जिसमें यह कहा गया कि सरकार द्वारा पूर्व में जारी निर्देशों का उद्देश्य

अधिनियम के प्रावधानों को अतिक्रमित करना नहीं था तथा उन्हें सावधानीपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। अतः यदि किसी व्यक्ति ने पंचाट को बिना विरोध स्वीकार कर लिया है, तो वह अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ के अधिकार से वंचित हो जाएगा।

10. तत्पश्चात् उत्तरदाता संघ ने मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष 1983 की रिट याचिका संख्या 55144 दायर की और, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित राहतें मांगीं:

“... एक परमादेश रिट या कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाए कि वे 21.5.1981 के पत्र संख्या डी.डिस.11/3748/80 में निहित द्वितीय उत्तरदाता के निर्देशों तथा भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 को प्रभावी करें और परिणामस्वरूप उत्तरदाता संख्या 4 से 8 को निर्देश दिया जाए कि वे अनुलग्नक I, II, III और IV में शामिल व्यक्तियों के मामलों को, सेलम इस्पात परियोजना हेतु अधिग्रहित भूमि के संबंध में, उच्च प्रतिकर प्रदान करने हेतु दीवानी न्यायालय को संदर्भित करें...”

11. उक्त रिट कार्यवाही में राज्य सरकार ने एक प्रति-शपथपत्र दायर करते हुए, अन्य बातों के साथ यह कहा कि अधिकांश मामलों में पंचाटधारियों तथा हितबद्ध व्यक्तियों को अधिनियम की धारा 12(2) के अंतर्गत नोटिस तामील किए गए थे और वे भूमि अर्जन कार्यवाही के दौरान उपस्थित भी थे। यह भी अभिकथित किया गया कि पंचाटधारियों को किसी भी स्थिति में उस संबंध में ज्ञान था और, इस प्रकार, जिन पंचाटधारियों ने प्रतिकर राशि को विरोध सहित स्वीकार किया तथा संदर्भ हेतु आवश्यक आवेदन दायर किए, उनके मामलों को अधिनियम की धारा 18(2) के अनुसार दीवानी न्यायालय को संदर्भित कर दिया गया था। निर्विवाद रूप से, वर्तमान अपीलकर्ता को प्रारंभ में उक्त रिट याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया था। 19.11.1984 को या उसके आसपास, उसने स्वयं को उक्त रिट याचिका में पक्षकार बनाए जाने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे स्वीकार कर लिया गया। 6.3.1992 के निर्णय और आदेश द्वारा, उक्त न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट

याचिका को स्वीकार करते हुए यह निर्देश दिया कि मात्र पंचाट के प्रति विरोध या असंतोष की अभिव्यक्ति, भले ही वह लिखित न हो, संबंधित प्राधिकारियों द्वारा मामलों को दीवानी न्यायालय को संदर्भित करने के लिए पर्याप्त होगी। उसी आधार पर, समाहर्ता को निर्देश दिया गया कि वह एक वर्ष की अवधि के भीतर संदर्भ की प्रक्रिया पूर्ण करे।

12. 6.3.1992 के उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, राज्य सरकार तथा अपीलकर्ता दोनों द्वारा अंतःन्यायालयीय अपीलें प्रस्तुत की गईं।

15. जहाँ तक उन व्यक्तियों का संबंध है जिन्हें अधिनियम की धारा 12(2) के अंतर्गत नोटिस प्राप्त नहीं हुआ था, विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही रूप से यह निर्देश दिया कि सरकार ऐसे व्यक्तियों को धारा 12(2) के अंतर्गत नोटिस जारी करे और उन व्यक्तियों को यह विचार करने का अवसर दिया जाए कि वे धारा 18(2) के अनुसार संदर्भ चाहते हैं या नहीं।

21. सर्वोच्च न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा स्थापित इस सुसंगत विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि मात्र पंचाट के प्रति विरोध या असंतोष की अभिव्यक्ति, भले ही वह लिखित न हो, पर्याप्त हो सकती है और संबंधित प्राधिकारी उस स्थिति में मामलों को धारा 18(2) के अनुसार न्यायालय को संदर्भित करने के लिए बाध्य है। इस विधिक स्थिति के मद्देनजर विभिन्न श्रेणियों के ऐसे व्यक्ति जिन्होंने अपने विरोध व्यक्त किए तथा संदर्भ हेतु आवेदन दायर किए, और कुछ जिन्होंने धारा 12(2) के अंतर्गत नोटिस भी प्राप्त नहीं किया था, उन्हें धारा 18(2) के अंतर्गत संदर्भ का अधिकार देने से वंचित नहीं किया जा सकता, अतः हमें एकल न्यायाधीश के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता। अतः रिट अपीलें निरस्त की जाती हैं तथा लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

13. 2006 की दीवानी अपील संख्या 5763, 5764, 5765, 5766 एवं 5767 का दूसरा समूह तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड द्वारा दायर किया गया है, जो उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 14.7.2006 को पारित निर्णय एवं आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर दायर की गई हैं, जिसमें एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 30.6.2001 को पारित आदेश की पुष्टि करते हुए रिट याचिकाओं को स्वीकार कर लिया था, जो उत्तरदाताओं द्वारा दायर की गई थीं, और यह निर्णय *स्टील अथॉरिटी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त)* के मामले में दिए गए निर्णय पर आधारित था।

14. तथापि, हमारे समक्ष उठाए गए सामान्य प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व हम 2006 की दीवानी अपील संख्या 5763 के प्रमुख तथ्यों पर ध्यान देना उचित समझते हैं।

15. राज्य तमिलनाडु ने इस मामले में अपीलकर्ता के अनुरोध पर लगभग 90 एकड़ भूमि पर आवास निर्माण हेतु अधिग्रहण के लिए अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत दिनांक 26.6.1985 को अधिसूचना जारी की तथा धारा 6 के अंतर्गत दिनांक 4.9.1985 को घोषणा प्रकाशित की।

16. दिनांक 30.6.1988 को पंचाट पारित किए गए। भू-स्वामियों को जब पंचाट की सूचना दी गई, जिसमें भूमि का बाजार मूल्य रु.1,61,538/ प्रति हेक्टेयर निर्धारित किया गया था, उन्होंने भूमि अधिग्रहण समाहर्ता के समक्ष निम्नलिखित बयान दिया:

“पंचाट जांच नोटिस पट्टेदार को तामील किया गया। पट्टेदार पंचाट जांच में उपस्थित हुआ और उसने बयान दिया कि अधिग्रहित भूमि उसे उत्तराधिकार से प्राप्त हुई है। रु.1,61,538 प्रति हेक्टेयर की दर से निर्धारित प्रतिकर बहुत कम है तथा भूमि सेलम-धर्मपुरी राष्ट्रीय राजमार्ग से सटी हुई है और आसपास की भूमि रु.25,00,000/- प्रति एकड़ की दर से बिक रही है, इसलिए उसी दर से प्रतिकर दिया जाना चाहिए और इसके समर्थन में कोई प्रमाण नहीं है।

उसने यह भी कहा कि प्रतिकर राशि उसे दे दी जाए तथा वह उसे विरोध सहित प्राप्त करेगा। अधिक प्रतिकर प्राप्त करने हेतु उसने उप न्यायालय को संदर्भ करने का अनुरोध किया। पट्टेदार को मुआवज़े का भुगतान करने के अलावा, ज़मीन अधिग्रहण अधिनियम की धारा 18 के तहत एक संदर्भ उप न्यायालय को भेजा जाएगा।”

17. तथापि, इसके बावजूद, समाहर्ता द्वारा स्वतः से कोई संदर्भ नहीं किया गया। अतः दिनांक 10.6.1988 के आसपास संघ द्वारा संदर्भ हेतु अभ्यावेदन दिए गए। इन अभ्यावेदनों का अनुस्मारक दिनांक 21.1.1991 को भेजा गया। चूंकि ऐसे अभ्यावेदनों और अनुस्मारकों के बावजूद भूमि अधिग्रहण समाहर्ता द्वारा धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए उत्तरदाताओं द्वारा एक रिट याचिका दायर की गई, जिसमें अन्य बातों के साथ निम्नलिखित राहतें मांगी गईं :

“... यह माननीय न्यायालय कृपया उत्प्रेषण-परमादेश की प्रकृति में कोई रिट, आदेश अथवा निर्देश, अथवा अन्य उपयुक्त रिट जारी करने की कृपा करे तथा द्वितीय उत्तरदाता द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जो प्रकरण संख्या ना. का. सं. 549/96549/96 दिनांक 18.10.2000 से संबंधित है, का अभिलेख तलब कर उसका परीक्षण करने के उपरांत उसे अभिखंडित करें और, द्वितीय उत्तरदाता को यह निर्देश देने की कृपा करे कि वह याचिकाकर्ताओं की निम्नलिखित भूमि, अर्थात् सर्वेक्षण सं. 475/1 बी-0.09.5, सर्वेक्षण सं. 475/1 एबी-0.04.5 एचसीएस, सर्वेक्षण सं. 475/1 एएफ-0.05 एचसीएस, सर्वेक्षण सं. 475/1 एआई-0.07.0, सर्वेक्षण सं. 475/1 के-0.03.5 आंशिक, सर्वेक्षण सं. 475/1 एल-0.03.5 एचसीएस, सर्वेक्षण सं. 475/1 ए-0.08.5 एचसीएस, सर्वेक्षण सं. 475/1 टी-0.21.5, सर्वेक्षण सं. 475/1 एम-0.03.5, सर्वेक्षण सं. 475/1 एन-0.16.0, सर्वेक्षण सं. 475/1 डब्ल्यू-0.04.5, सर्वेक्षण सं. 475/1 एक्स-0.01.5, सर्वेक्षण सं. 475/1 एए-0.01.0, सर्वेक्षण सं. 475/1 आई-0.05.5 तथा सर्वेक्षण सं. 475/1 जेड-0.106.0, जो ग्राम ए. जेट्टी हल्ली, तहसील धर्मपुरी

तलूक में स्थित है, के संबंध में भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अधीन उच्चतर प्रतिकर के निर्धारण हेतु सक्षम दीवानी न्यायालय को संदर्भ प्रेषित करे तथा प्रकरण की परिस्थितियों में न्यायहित में ऐसे अन्य अथवा अतिरिक्त आदेश पारित करने की कृपा करे, जिन्हें यह माननीय न्यायालय उचित एवं न्यायसंगत समझे।

यह प्रार्थना की जाती है प्रार्थना है कि यह माननीय न्यायालय, उपर्युक्त रिट याचिका के अंतिम निस्तारण तक, द्वितीय उत्तरदाता को निर्देश देने की कृपा करे कि वह ग्राम ए. जेट्टी हल्ली, तहसील धर्मपुरी में स्थित याचिकाकर्ताओं की स्वामित्वाधीन भूमि, अर्थात् सर्वेक्षण सं. 475/1 बी-0.09.5, सर्वेक्षण सं. 475/1एबी-0.04.5 एचसीएस, सर्वेक्षण सं.475/1एएफ-0.05 एचसीएस, सर्वेक्षण सं.475/1एआई-0.07.0, सर्वेक्षण सं.475/1के-0.03.5 आंशिक, सर्वेक्षण सं.475/1एल-0.03.5 एचसीएस, सर्वेक्षण सं.475/1ए-0.08.5 एचसीएस, सर्वेक्षण सं.475/1टी-0.21.5, सर्वेक्षण सं.475/1एम-0.03.5, सर्वेक्षण सं.475/1एन-0.16.0, सर्वेक्षण सं.475/1डब्ल्यू-0.04.5, सर्वेक्षण सं.475/1एक्स-0.01.5, सर्वेक्षण सं.475/1एए-0.01.0, सर्वेक्षण सं.475/1ई-0.05.5 तथा सर्वेक्षण सं.475/1जेड-0.106.0, जो ग्राम ए. जेट्टी हल्ली, तहसील धर्मपुरी तलूक में स्थित है, के संबंध में भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 1 के अधीन उच्चतर प्रतिकर के निर्धारण हेतु सक्षम दीवानी न्यायालय को संदर्भ प्रेषित करे उपर्युक्त रिट याचिका के निपटारे तक तथा प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों में यह माननीय न्यायालय जो अन्य अथवा अतिरिक्त आदेश उचित एवं न्यायोचित समझे, उन्हें पारित करने की कृपा करे और इस प्रकार न्याय प्रदान करे।

18. यह कहा गया है कि वर्ष 1996 में, राज्य सरकार द्वारा लगभग 80 मामलों में संदर्भ किया गया, जिसकी वैधता या औचित्य को अपीलकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई। अतः शेष मामलों में संदर्भ करने हेतु पुनः अभ्यावेदन दिए गए, जिन्हें दिनांक 18.10.2000 के आदेश द्वारा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि ये अभ्यावेदन 12 वर्ष की अवधि के पश्चात प्रस्तुत किए गए थे।

19. उक्त दिनांक 18.10.2000 के आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए, उत्तरदाता द्वारा नवंबर 2000 में एक रिट याचिका दायर की गई। साथ ही यह प्रार्थना भी की गई कि भूमि अधिग्रहण समाहर्ता को यह निर्देश दिया जाए कि वह अधिनियम की धारा 18 के अनुसार उन मामलों को उच्च प्रतिकर प्रदान करने हेतु दीवानी न्यायालय को संदर्भित करे। दिनांक 30.1.2001 के निर्णय एवं आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका स्वीकार कर ली गई।

20. यह भी अभिलेख पर रखा जाता है कि राज्य सरकार द्वारा संदर्भ आदेशों की संधार्यता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए उक्त निर्देशों के अनुसरण में या उसे आगे बढ़ाने के क्रम में, भूमि अधिग्रहण समाहर्ता द्वारा संदर्भ किए गए। अपीलकर्ता-हाउसिंग बोर्ड ने इन कार्यवाहियों में बिना किसी आपत्ति के भाग लिया। संदर्भ न्यायालय द्वारा दिनांक 19.4.2003 के निर्णय में प्रतिकर राशि रु.1.50 प्रति वर्ग फुट से बढ़ाकर रु.6.00 प्रति वर्ग फुट कर दी गई। इसके विरुद्ध अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में अपीलें दायर कीं। तथापि, दिनांक 19.7.2004 के आदेश द्वारा, अपीलकर्ता द्वारा खंडपीठ के निर्देशों का अनुपालन न करने के कारण, अपीलें खारिज कर दी गईं। विद्वान एकल न्यायाधीश का दिनांक 30.1.2001 का आदेश, वर्तमान आक्षेपित निर्णय द्वारा, खंडपीठ द्वारा भी पुष्टि किया गया है।

21. श्री रणजीत कुमार, विद्वान अधिवक्ता जो भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड की ओर से उपस्थित हैं, निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करेंगे:

1. धारा 18(1) के प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं; अतः भू-स्वामियों के लिए यह आवश्यक था कि वे उसी के अनुसार उचित आवेदन दायर करें और चूँकि उन्होंने पंचाट पारित होने के 6 सप्ताह के भीतर, जहाँ वे उपस्थित थे तथा पंचाट की सूचना की तामील की तारीख से 6 माह के भीतर, जहाँ वे उपस्थित नहीं थे कोई आवेदन नहीं किया, इसलिए पंचाट अंतिम हो गया।
2. चिद्वान एकल न्यायाधीश तथा खंडपीठ दोनों ने विधि की गंभीर त्रुटि की है, क्योंकि उन्होंने यह ध्यान में नहीं रखा कि यदि यह मान भी लिया जाए कि भू-स्वामियों को वर्ष 1981 में पंचाट की प्रलक्षित सूचना प्राप्त हो गई थी, तो संदर्भ हेतु आवेदन 6 माह के भीतर ही दायर किया जाना चाहिए था, उसके बाद नहीं।
3. इस तथ्य को देखते हुए कि अधिकांश व्यक्तिगत भू-स्वामियों द्वारा बिना किसी विरोध प्रतिकर राशि स्वीकार कर लिए जाने के कारण, वे अधिनियम की धारा 31 के द्वितीय परंतुक के अनुसार, स्वयं या अपने संघ के माध्यम से रिट याचिका दायर करने से वर्जित हैं।
4. उच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता संघ की याचिका पर विचार कर गंभीर त्रुटि की, क्योंकि वह न तो अधिनियम की धारा 3(बी) के अर्थ में 'हितबद्ध व्यक्ति' था और न ही धारा 3(जी) के अर्थ में कार्य करने का अधिकार रखता था। इसके अतिरिक्त, पंचाट पारित किए जाने की तिथि से 20 से 25 वर्ष की दीर्घ अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उक्त रिट याचिका पर विचार किया जाना विधिसम्मत नहीं था।
5. परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 लागू नहीं होती, अतः उच्च न्यायालय परिसीमा अवधि समाप्त होने के बाद अथवा अधिनियम की धारा 18(2) में निर्धारित अवधि के बाद कोई रिट जारी नहीं कर सकता था।

6. रिट याचिका में संघ द्वारा सामूहिक संदर्भ की प्रार्थना विधि के अनुसार पूर्णतः अस्वीकार्य है, क्योंकि भूमि अधिग्रहण समाहर्ता को भी प्रत्येक मामले की व्यक्तिगत जांच करनी होती है।

7. यदि आक्षेपित निर्णय अपास्त नहीं किया जाता, तो अपीलकर्ता, जो एक सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम है, को बिना किसी विधिक औचित्य के भारी वित्तीय दायित्वों का सामना करना पड़ेगा।

22. श्री बनाम कृष्णमूर्ति, विद्वान अधिवक्ता जो तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड की ओर से उपस्थित हैं, ने श्री रणजीत कुमार द्वारा प्रस्तुत तर्कों को अपनाया। उन्होंने आगे यह भी तर्क दिया कि प्रतिकर वृद्धि के मामले में हितबद्ध व्यक्ति होने के नाते तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड को संदर्भ न्यायाधीश द्वारा समुचित नोटिस दिया जाना चाहिए था। यदि रिट याचिका में ऐसा नोटिस दिया गया होता, तो यह इंगित किया जा सकता था कि रिट याचिका संघार्य नहीं है।

23. इसके विपरीत, उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जयंत मुखराज ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए:

1. धारा 18 की उप-धारा (1) के अंतर्गत प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं, अतः लिखित रूप में संदर्भ हेतु आवेदन दायर करना अनिवार्य नहीं है।
2. भू-स्वामियों द्वारा दिए गए अभ्यावेदनों में यह स्पष्ट किया गया था कि वे प्रतिकर राशि से संतुष्ट नहीं हैं और उन्होंने संदर्भ करने की मांग की थी, जिसे भूमि अधिग्रहण समाहर्ता और नतीजतन राज्य सरकार ने स्वीकार कर लिया और अतः यहां अपीलकर्ता यह कहने से रोक दिए गए हैं कि धारा 18 की उप-धारा (1) अनिवार्य प्रकृति की है।
3. क्षेत्र के भू-स्वामी निर्धन कृषक हैं और उन्हें उनके विधिक अधिकारों की जानकारी नहीं दी गई थी, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा उत्तरदाता-संघ की रिट याचिका स्वीकार करने में कोई अवैधानिकता नहीं है।

4. भू-स्वामी का यह अधिकार कि उसे भूमि का उचित बाजार मूल्य प्राप्त हो, एक महत्वपूर्ण अधिकार है और यह धारा 18 की प्रक्रिया से ऊपर प्राथमिकता रखता है।
5. न्यायिक पुनर्विलोकन के अंतर्गत उच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह पक्षकारों के साथ पूर्ण न्याय करने हेतु आवश्यक निर्देश जारी करे, विशेषकर उन छोटे कृषकों के संदर्भ में जो दूरस्थ गाँवों में रहते हैं और जिन्हें उनके अधिकारों की जानकारी नहीं होती।

24. राज्य निजी भूमि के साथ-साथ अपनी स्वयं की भूमि के अधिग्रहण हेतु अपने सर्वाधिकार की शक्ति का प्रयोग करता है। ऐसा अधिग्रहण न केवल सार्वजनिक प्रयोजन के लिए, बल्कि किसी कंपनी के लिए भी किया जाना विधिसम्मत है। संसद तथा राज्य विधानमंडलों ने इस सर्वाधिकार शक्ति को प्रभावी बनाने तथा संविधान के अनुच्छेद 300ए के अंतर्गत भू-स्वामियों को प्रदत्त संवैधानिक संरक्षण को ध्यान में रखते हुए अनेक विधियाँ अधिनियमित की हैं।

25. जब अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भूमि का अधिग्रहण किया जाता है, तो न केवल उसके लिए सार्वजनिक प्रयोजन का अस्तित्व आवश्यक है, बल्कि अधिग्रहण एक निश्चित समय-सीमा के भीतर भी किया जाना चाहिए। प्रतिकर के भुगतान के लिए प्रावधान किए गए हैं और उसकी प्रक्रिया अधिनियम में ही निर्धारित है। कुछ अन्य विधियों के विपरीत, इस अधिनियम में प्रतिकर भुगतान के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। मंचों का गठन विभिन्न पदानुक्रमित स्तरों में किया गया है, जिनमें अपीलीय मंच भी शामिल हैं। भूमि अधिग्रहण समाहर्ता एक वैधानिक प्राधिकारी है। वह अधिनियम की धारा 2(सी) के अर्थ में समाहर्ता हो भी सकता है और नहीं भी।

26. यदि वह अधिनियम के अर्थ में समाहर्ता नहीं है, तो कुछ न्यायोचित अपवादों को छोड़कर, जिनका उल्लेख आगे किया जाएगा, वह संविधान के भाग III के प्रयोजन हेतु समाहर्ता के रूप में कार्य करने का समाहर्ता नहीं होगा।

27. अधिनियम की धारा 4(1) किसी भी भूमि के अधिग्रहण हेतु प्रारंभिक अधिसूचना के प्रकाशन का प्रावधान करती है, जो तीन माध्यमों से किया जाता है राजपत्र में, उस क्षेत्र में प्रसारित दो दैनिक समाचारपत्रों में— जिनमें से एक क्षेत्रीय भाषा में होना चाहिए, तथा स्थानीय स्तर पर ऐसे स्थानों पर जहाँ समाहर्ता द्वारा अधिसूचना का सार प्रकाशित किया जाता है।

28. धारा 12(1) निम्नानुसार है:

“12. समाहर्ता का पंचाट कब अंतिम होगा—(1) ऐसा पंचाट समाहर्ता के कार्यालय में दाखिल किया जाएगा और, यहाँ बाद में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, यह अंतिम एवं निर्णायक साक्ष्य होगा, समाहर्ता और हितबद्ध व्यक्तियों के बीच, चाहे वे समाहर्ता के समक्ष उपस्थित हुए हों या नहीं, भूमि के वास्तविक क्षेत्रफल, उसके मूल्य तथा प्रतिकर के विभाजन के संबंध में।”

29. तथापि, पंचाट की यह अंतिमता धारा 18, धारा 31(2) अथवा धारा 30 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण के अधीन है। इन तीन तथ्यात्मक विषयों को छोड़कर, अधिनियम में ऐसा कुछ नहीं है जो पंचाट को उसकी विधिकता के संदर्भ में अंतिम बनाता हो। इसके अतिरिक्त, अधिनियम में “अंतिम” शब्द का प्रयोग केवल यह दर्शाता है कि उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी। किसी वैधानिक प्रावधान में “अंतिम” या “निर्णयात्मक” शब्द की व्याख्या लॉर्ड डेनिंग, एम.आर. द्वारा *आर. वी. मेडिकल अपील ट्रिब्यूनल* (1957) 1 क्यूबी 574, 583 में निम्न प्रकार की गई है:

“शब्द ‘अंतिम’ पर्याप्त नहीं है। इसका केवल अर्थ है ‘अपील के बिना’। इसका अर्थ यह नहीं है कि ‘उत्प्रेषण-लेख का सहारा नहीं लिया जा सकता’। यह निर्णय को तथ्यों के

संबंध में अंतिम बनाता है, लेकिन विधि के संबंध में नहीं। भले ही किसी विधि द्वारा निर्णय को 'अंतिम' कहा गया हो, फिर भी अधिकार-क्षेत्र के अतिक्रमण या अभिलेख पर स्पष्ट विधि-त्रुटि की स्थिति में उत्प्रेषण-लेख जारी किया जा सकता है।”

30. भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रयोजन के लिए कार्यवाही एक ऐसे समाहर्ता द्वारा की जाती है जिसे सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और जिसे भूमि अधिग्रहण समाहर्ता कहा जाता है। भूमि अधिग्रहण समाहर्ता के समक्ष की जाने वाली कार्यवाही प्रशासनिक प्रकृति की होती है, न कि न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रकृति की। जब सरकार किसी क्षेत्र में भूमि अधिग्रहण करना चाहती है, तो उसे धारा 4 के अंतर्गत राजपत्र में अधिसूचना जारी करनी होती है तथा समाचारपत्रों में भी प्रकाशित करना होता है और एक सार्वजनिक सूचना देनी होती है, जिससे सरकार की ओर से कोई भी व्यक्ति भूमि में प्रवेश कर सके और खुदाई, स्तर निर्धारण, सीमांकन आदि कार्य कर सके। यह अधिसूचना सरकार की भूमि अधिग्रहण की मंशा को प्रकट करती है, जिसके अनुसार सरकारी समाहर्ता यह जांच और निर्धारण करने के लिए अधिकृत हो जाते हैं कि भूमि उस प्रयोजन के लिए उपयुक्त है या नहीं। यह धारा यह भी अनिवार्य करती है कि सरकार द्वारा अधिकृत समाहर्ता या व्यक्ति किसी भवन, बंद आंगन या बगीचे में प्रवेश करने से पहले सात दिन की सूचना देगा। यह भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया का एक अनिवार्य प्रावधान है।

31. सरकार का समाहर्ता या अधिकृत व्यक्ति सभी आवश्यक क्षति के लिए भुगतान करने हेतु बाध्य है, और राशि की अपर्याप्तता से संबंधित सभी विवाद समाहर्ता के समक्ष जाते हैं। धारा 5(ए) के अंतर्गत कोई भी व्यक्ति जो धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचित भूमि में हित रखता है (जिसे मुआवजे में हिस्से का दावा करने का अधिकार है), वह लिखित में तथा व्यक्तिगत रूप से आपत्ति उठा सकता है। समाहर्ता ऐसी आपत्तियों की जांच करने के बाद अपनी प्रतिवेदन सरकार को भेजता है, और इस संबंध में सरकार का निर्णय अंतिम होता है। धारा 5 ए के अंतर्गत समाहर्ता की प्रतिवेदन पर विचार करने के बाद सरकार एक वर्ष के

भीतर धारा 4 की अधिसूचना के आधार पर भूमि अधिग्रहण हेतु घोषणा जारी कर सकती है, जो अधिग्रहण की एक अनिवार्य आवश्यकता है।

32. धारा 6 के अंतर्गत घोषणा के पश्चात, समाहर्ता को धारा 7 के अनुसार भूमि अधिग्रहण के लिए संबंधित सरकार चाहे राज्य हो या केंद्र से आदेश प्राप्त करना होता है। अधिग्रहण की प्रक्रिया का अगला चरण यह है कि समाहर्ता भूमि को चिन्हित कराए, उसका मापन कराए तथा उपयुक्त नक्शा तैयार कराए, यदि यह पहले से न किया गया हो। इस धारा की आवश्यकता केवल अनुमानित मापन से संबंधित है और इसमें सटीक मापन की अपेक्षा नहीं की जाती। इस धारा के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया सीमांकन की होती है, जिसमें अधिग्रहित की जाने वाली भूमि की सीमाओं को खाई खोदकर या खंभे लगाकर चिन्हित किया जाता है। इसका उद्देश्य मापन और अधिग्रहण योजना तैयार करने में सुविधा देना तथा निजी व्यक्तियों को यह बताना भी है कि कौन-सी भूमि ली जा रही है। यह कार्य सरकार के विभाग या कंपनी, जैसा भी मामला हो, द्वारा किया जाता है। धारा 8 और धारा 4 के अंतर्गत बाधा डालना एक अपराध है, जिसके लिए अधिकतम एक वर्ष का कारावास तथा जुर्माना लगाया जा सकता है, जो पचास रुपये से अधिक नहीं होगा।

33. धारा 9 समाहर्ता को यह निर्देश देती है कि वह सार्वजनिक सूचना ऐसे स्थानों पर प्रदर्शित कराए जहाँ सरकार की भूमि लेने की मंशा स्पष्ट हो और सभी हितबद्ध व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर प्रतिकर के दावे प्रस्तुत करने के लिए कहा जाए। इस प्रकार इस धारा के अंतर्गत समाहर्ता को दो प्रकार की सूचनाएँ जारी करनी होती हैं, एक स्थानीय स्तर पर और दूसरी भूमि पर अधिकार रखने वाले या उसमें रुचि रखने वाले व्यक्तियों को। यह एक अनिवार्य प्रावधान है।

34. अधिग्रहण प्रक्रिया के अगले चरण में यह अपेक्षा की जाती है कि संबंधित व्यक्ति भूमि में हित रखने वाले अन्य व्यक्तियों के नाम तथा पिछले 3 वर्षों में भूमि से प्राप्त आय/लाभ की जानकारी समाहर्ता को प्रदान करे। यह उस व्यक्ति को समाहर्ता को ऐसी

जानकारी देने के लिए बाध्य भी करता है, और ऐसा न करने पर उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 175 और 176 के तहत उत्तरदायी बनाता है।

35. समाहर्ता के समक्ष कार्यवाही का अंतिम चरण हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा धारा 8 और 9 के अंतर्गत प्रस्तुत आपत्तियों की जांच करना तथा धारा 4 की अधिसूचना की तिथि पर भूमि के मूल्य के संबंध में प्रतिकर का पंचाट पारित करना है। इस जांच में नोटिस के उत्तर में उपस्थित पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाता है, उनके दावों की जांच की जाती है, आपत्तियों पर विचार किया जाता है तथा भूमि के मूल्य निर्धारण हेतु आवश्यक सभी जानकारी एकत्र की जाती है। यह जांच समय-समय पर स्थगित भी की जा सकती है जैसा समाहर्ता उचित समझे। अंत में पंचाट पारित किया जाता है, जिसमें निम्न तीन बातें सम्मिलित होती हैं:

- भूमि का सही क्षेत्रफल
- उसके हिसाब से देय प्रतिकर राशि
- मुआवजे का बँटवारा, यदि कोई हो।

36. धारा 11 समाहर्ता को यह बाध्य करती है कि वह उन सभी व्यक्तियों के हितों की रक्षा करे जो मामले में हितबद्ध हैं, भले ही वे उसके समक्ष उपस्थित न हुए हों। प्रतिकर निर्धारण करते समय समाहर्ता को भूमि के अनुमानित मूल्य तथा अन्य निर्दिष्ट कारकों पर विचार करना चाहिए। आसपास की संपत्तियों का मूल्य एक मानदंड के रूप में लिया जा सकता है। पंचाट दो वर्षों के भीतर पारित किया जाना चाहिए।

37. धारा 12, 18, 30, 31 तथा भाग III में दिए गए संदर्भ की प्रक्रिया का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि समाहर्ता के पंचाट के विरुद्ध केवल तीन तथ्यात्मक विषयों के संबंध में ही संदर्भ का अधिकार उपलब्ध है। बेशक, अधिनियम की धारा 26 के तहत संदर्भ न्यायाधीश द्वारा दिए गए पंचाट के खिलाफ धारा 54 के अंतर्गत उच्च न्यायालय में अपील का प्रावधान है तथा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में द्वितीय अपील का प्रावधान

है। किंतु अपील का अधिकार केवल उपर्युक्त तीन तथ्यात्मक प्रश्नों तक सीमित है। अतः अधिकतम यही कहा जा सकता है कि यह अधिनियम केवल उस विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक पूर्ण संहिता है, जिसके अंतर्गत भूमि के क्षेत्रफल, भूमि के मूल्य तथा हितबद्ध व्यक्तियों के मध्य प्रतिकर के विभाजन से संबंधित विवादों का न्यायनिर्णयन किया जाता है।

38. इसके अतिरिक्त, अधिनियम के अंतर्गत ऐसा न तो कोई स्पष्ट प्रावधान है और न ही कोई निहित आशय जिससे यह कहा जा सके कि अधिनियम के तहत की गई किसी कार्यवाही को किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता या दीवानी न्यायालय का अधिकार क्षेत्र पूर्णतः वर्जित है। अधिनियम की किसी भी कार्यवाही या पंचाट की वैधता को किसी भी न्यायिक रूप से मान्य आधार पर न्यायालय में चुनौती देने पर कोई अंतिमता लागू नहीं होती। अधिनियम की योजना के अवलोकन से यह भी स्पष्ट होता है कि इसमें विधि के सभी प्रश्नों के निर्धारण हेतु कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जो अधिनियम के अंतर्गत उत्पन्न हो सकने वाले सभी विधिक प्रश्नों का समाधान कर सके। साथ ही, इस अधिनियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा किसी भूमि को अवैध रूप से लिए जाने की स्थिति में उसकी पुनः प्राप्ति की जा सके।

39. वे व्यक्ति जिन्होंने धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन नहीं किया है, उन्हें भी धारा 28 ए के अंतर्गत समान प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार है। अतः केवल इस कारण कि किसी भू-स्वामी ने प्रारंभिक अवस्था में संदर्भ हेतु आवेदन नहीं किया, यह नहीं माना जा सकता कि उसके पास कोई अन्य उपाय उपलब्ध नहीं है। धारा 28 ए उन परिस्थितियों को संबोधित करती है जहाँ किसी व्यक्ति को अपने अधिकारों की जानकारी न होने के कारण वह प्रतिकर वृद्धि हेतु आवेदन करने में असमर्थ रहा हो। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करता है कि ऐसे व्यक्ति को भी न्यायोचित प्रतिकर प्राप्त हो।

40. अधिनियम के प्रावधानों को संपूर्णता में पढ़ा जाना चाहिए। अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या एवं उनके अनुप्रयोग के उद्देश्य से समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना आवश्यक है और

ऐसा करने पर हम इस मत के हैं कि अधिनियम के प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए की कसौटी पर खरे उतरते हैं। अधिनियम एक निष्पक्ष प्रक्रिया प्रदान करता है। संसद अपनी विवेकाधीन शक्ति के अंतर्गत अतिरिक्त राहत देने की शर्तें निर्धारित कर सकती है। ऐसा करते समय, उसे इसके लिए प्रक्रिया निर्धारित करने का अधिकार है। यद्यपि ऐसी प्रक्रिया उसकी संवैधानिक वैधता के परीक्षण हेतु निष्पक्षता और युक्तिसंगतता की कसौटियों को पूरा करती है, तथापि सामान्यतः जिन तरीकों और ढंग से प्रावधानों को लागू किया जाना ज़रूरी है, उनका पालन किया जाना चाहिए। तथापि, यह प्रश्न कि उसमें विनिर्दिष्ट प्रक्रियाएँ अनिवार्य मानी जाएँगी अथवा निदेशात्मक, संबंधित अधिनियम की व्याख्या पर निर्भर करेगा। अधिनियम की योजना के अनुसार जैसा कि पहले बताया गया है, प्रतिकर निर्धारण की प्रक्रिया कई चरणों में होती है, यानी, हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस देना, पंचाट पारित करना, उसकी समय-सीमा, तथा पंचाट का प्रकाशन।

41. धारा 12 यह प्रावधान करती है कि समाहर्ता का पंचाट अंतिम होगा। यह भी समाहर्ता पर यह कर्तव्य डालती है कि वह उन हितबद्ध व्यक्तियों को पंचाट की सूचना दे जो पंचाट के समय व्यक्तिगत रूप से या अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से उपस्थित नहीं थे। अतः पंचाट के निर्माण एवं प्रकाशन की जानकारी/ज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

42. धारा 18 का उपयोग करने के लिए हितबद्ध व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि:

- (i) वह पंचाट को स्वीकार न करे;
- (ii) वह लिखित आवेदन द्वारा समाहर्ता को यह अनुरोध करे कि मामले को न्यायालय को संदर्भित किया जाए, जिसमें वह अपनी आपत्तियाँ स्पष्ट रूप से बताए, जैसे(ए) प्रतिकर की राशि, (बी) प्रतिकर प्राप्त करने वाला व्यक्ति, या (सी) हितबद्ध व्यक्तियों के बीच उसका विभाजन।

43. अतः समाहर्ता द्वारा लिखित आवेदन प्राप्त होने पर, वह भू-स्वामी या भू-धारक द्वारा उठाई गई आपतियों को ध्यान में रखते हुए संदर्भ कर सकता है, चाहे वे आपतियाँ ऊपर वर्णित किसी एक या सभी विषयों से संबंधित हों।

44. विधि यह नहीं मानती कि पंचाट पारित होने से पूर्व कोई सामान्य या अस्पष्ट आपति समाहर्ता द्वारा स्वीकार की जा सकती है। अतः पंचाट के प्रति आपति विशिष्ट होनी चाहिए। जब संदर्भ किया जाता है, तो न्यायालय सामान्यतः उस संदर्भ की शर्तों से बंधा होता है। संदर्भ न्यायालय को कोई पूर्ण अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं होता। वह सीधे समाहर्ता या भू-स्वामियों से प्राप्त किसी आवेदन पर मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकता।

45. एक बार पंचाट पारित हो जाने के बाद, उसकी अंतिमता और निर्णायकता को ध्यान में रखते हुए, समाहर्ता का यह वैधानिक कर्तव्य होता है कि वह निर्धारित राशि के भुगतान की पेशकश करे, बशर्ते कि संदर्भ संबंधी प्रावधान लागू हों। इस प्रयोजन के लिए धारा 18 को धारा 31 के साथ संलग्न उपबंधों के साथ पढ़ा जाना आवश्यक है। हितबद्ध व्यक्ति धारा 18 में निर्दिष्ट आधारों पर पंचाट की वैधता या शुद्धता को चुनौती दे सकता है। भुगतान या स्वीकार्यता के संदर्भ में वह धारा 31 के उपबंधों द्वारा शासित होगा। सामान्य व्यवहार में, यदि कोई व्यक्ति पंचाट की राशि से असहमत हो, तो वह उसे स्वीकार नहीं करता। तथापि, धारा 31 हितबद्ध व्यक्ति को यह अनुमति देती है कि वह विरोध सहित पंचाट स्वीकार कर सके। ऐसी स्वीकार्यता, तथापि, धारा 18 की उपधारा (2) तथा धारा 31 की उपधारा (2) के उपबंधों द्वारा सीमित है।

46. अतः ये परंतुक हितबद्ध व्यक्तियों के अधिकारों को सीमित करते हैं। जब अधिकारों को शर्तों के अधीन कर दिया जाता है, तो सामान्यतः यह माना जाता है कि वे शर्तें अनिवार्य प्रकृति की हैं।

47. जब कोई विधि परिसीमा का प्रावधान करती है, तो उसका पालन अनिवार्य होता है। तथापि, परिसीमा लागू करते समय न्यायालयों को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

48. धारा 18(2)(बी) में समाहर्ता के पंचाट की तिथि से अधिकतम छह माह की सीमा निर्धारित की गई है। अतः लंबी अवधि के पश्चात संदर्भ करना अनुमेय नहीं है, विशेषकर तब जब परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 का कोई अनुप्रयोग नहीं माना जा सकता।

49. *ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी (भूमि अधिग्रहण) और एक अन्य बनाम शाह मणिलाल चंदूलाल और अन्य [1996 (9) एससीसी 414]* में इस न्यायालय ने कहा:

“8. धारा 18(1) के अंतर्गत लिखित आवेदन करने का अधिकार प्रदान किया गया है। उपधारा (2) का परंतुक उस सीमा अवधि को निर्धारित करता है जिसके भीतर यह अधिकार प्रयोग किया जा सकता है। *मोहम्मद हसनूद्दीन बनाम महाराष्ट्र राज्य* में इस न्यायालय को धारा 18 के तहत समाहर्ता द्वारा समय-सीमा खत्म होने के बाद भेजे गए संदर्भ पर यह तय करना था कि क्या न्यायालय संदर्भ के पीछे जाकर मुआवज़ा तय कर सकती है, भले ही धारा 18 के तहत संदर्भ के लिए आवेदन समय-सीमा की वजह से अमान्य हो गया हो? इस न्यायालय ने यह माना था कि धारा 18 के तहत समाहर्ता को कुछ शर्तों की पूर्ति पर संदर्भ देना आवश्यक है, अर्थात्—(i) इच्छुक व्यक्ति द्वारा लिखित आवेदन, जिसने पंचाट स्वीकार नहीं किया है; (ii) पंचाट स्वीकार न करना तथा आपत्तियों का स्वरूप, और (iii) वह समय-सीमा जिसके भीतर आवेदन किया जाना चाहिए। कंडिका 22 में, उन शर्तों को पूर्ण किए जाने योग्य पूर्वापेक्षित शर्तों के रूप में विस्तार से स्पष्ट करने के बाद, न्यायालय ने यह माना कि धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ करने की शक्ति उसमें निर्धारित शर्तों द्वारा सीमित है, और ऐसी ही एक शर्त वह है जो परंतुक में निहित परिसीमा से संबंधित है। समाहर्ता एक वैधानिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है। यदि आवेदन निर्धारित समय-सीमा के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो समाहर्ता के पास संदर्भ करने की शक्ति नहीं होगी। अपनी इस शक्ति की सीमा निर्धारित करने के लिए समाहर्ता को यह निर्णय करना

होगा कि दावेदार द्वारा प्रस्तुत आवेदन समय-सीमा के भीतर है या नहीं, तथा यह भी कि धारा 18 में निर्धारित शर्तों का पालन किया गया है या नहीं। यदि समाहर्ता द्वारा संदर्भ गलत रूप से भी कर दिया गया हो, तब भी न्यायालय को उस संदर्भ की वैधता का निर्धारण करना होगा, क्योंकि संदर्भ की सुनवाई करने का न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र इसी बात पर निर्भर करता है कि धारा 18 के अंतर्गत विधिसम्मत एवं वैध संदर्भ किया गया है या नहीं। यदि संदर्भ विधिसम्मत नहीं है, तो न्यायालय को उस संदर्भ की सुनवाई करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं होता। इसलिए यह माना गया कि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि धारा 18 में निर्धारित सभी वैधानिक शर्तों, जिनमें परिसीमा से संबंधित शर्त भी शामिल है, का पालन किया गया है तथा आवेदन कालबाधित नहीं है। न्यायालय इस बात की जांच करने से वंचित नहीं है कि जिस संदर्भ की सुनवाई उससे अपेक्षित है, वह एक वैध संदर्भ है या नहीं। न्यायालय तभी प्रतिकर के निर्धारण की कार्यवाही करेगा जब संदर्भ वैध हो; यदि आवेदन कालबाधित है, तो न्यायालय उसके गुण-दोष पर विचार करने के लिए बाध्य नहीं है। केवल एक वैध संदर्भ ही न्यायालय को अधिकार-क्षेत्र प्रदान करता है। अतः न्यायालय को स्वयं यह प्रश्न पूछना होगा कि क्या उसे उस संदर्भ पर विचार करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है। यदि न्यायालय यह पाता है कि अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (2) के परंतुक द्वारा निर्धारित अवधि के पश्चात संदर्भ किया गया था, तो वह संदर्भ का उत्तर देने से इंकार कर देगा। तदनुसार यह निर्णय दिया गया कि चूँकि संदर्भ परिसीमा अवधि के बाद किया गया था, इसलिए न्यायालय द्वारा उस संदर्भ का उत्तर देने से इंकार करना न्यायोचित था।

9. यह स्पष्ट होगा कि न्यायालय को वैध संदर्भ भेजने के लिए एक पूर्व-शर्त यह है कि धारा 18(1) के अंतर्गत आवेदन लिखित रूप में हो तथा उप-धारा (2) के परंतुक के खंड (ए) के अनुसार, यदि आवेदक पंचाट बनाते समय व्यक्तिगत रूप से या अपने

अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित था, तो पंचाट की तिथि से छह सप्ताह के भीतर किया गया हो। जब समाहर्ता संदर्भ करता है, तो वह एक वैधानिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है।”

आगे यह भी कहा गया:

“17. यह याद रखना आवश्यक है कि भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984 (1984 का 68) द्वारा धारा 4, 6 और 11 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग हेतु परिसीमा निर्धारित की गई तथा न्यायालयों द्वारा दिए गए स्थगन के कारण व्यतीत समय को भी अपवर्जित किया गया। धारा 18 के उप-धारा (2) के परंतुक में निर्धारित सीमा का संज्ञान लेते हुए, परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को स्पष्ट रूप से विस्तारित नहीं किया गया है। यद्यपि परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) लागू हो सकती है, और धारा 18 के उप-धारा (2) के परंतुक को विशेष विधि माना जा सकता है, ऐसे आवेदन के अभाव में भी, भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 (1984 का 68) द्वारा अधिनियम में किए गए संशोधनों के पश्चात समाहर्ता और न्यायालय के मध्य पृथक् भूमिका एवं अधिकारिता का अंतर यथावत् रखा गया है और समाहर्ता/भूमि अर्जन पदाधिकारी अधिनियम के अधीन केवल वैधानिक दायित्वों का निर्वहन करता है, और धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ प्रेषित करना भी उसके ऐसे ही वैधानिक कर्तव्यों में से एक है। यह मानना कठिन है कि समाहर्ता/भूमि अर्जन पदाधिकारी, धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ करते समय, यद्यपि एक वैधानिक प्राधिकारी के रूप में कार्य कर रहा है, फिर भी परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रयोजनों के लिए उसे न्यायालय माना जाए।

18. यद्यपि यह कठोर प्रतीत हो सकता है, परंतु धारा 18(2) के परंतुक में निर्धारित स्पष्ट सीमा के कारण हम यह मत रखने के लिए बाध्य हैं कि धारा 29 के उप-धारा (2) को उप-धारा (2) के परंतुक पर लागू नहीं किया जा सकता। समाहर्ता/भूमि

अर्जन पदाधिकारी, जब वह धारा 18(1) के अंतर्गत कार्य करता है, तब वह न्यायालय नहीं होता। अतः, धारा 18 की उपधारा (2) के उपबंध में निर्धारित परिसीमा अवधि को बढ़ाने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं की जा सकती। इसलिए उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं था कि समाहर्ता धारा 5 परिसीमा अधिनियम के प्रयोजन हेतु न्यायालय है।”

50. *कर्नाटक राज्य बनाम लक्ष्मण* [2005 (8) एससीसी 709] में यह कहा गया:

“9. जैसा कि देखा जा सकता है, उपधारा (3) के अंतर्गत न्यायालय में आवेदन करने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं है। किंतु चूँकि आवेदन न्यायालय में किया जाता है, हालाँकि एक विशेष अधिनियम, अनुच्छेद 137 के तहत, परिसीमा अधिनियम, 1963 का अवशिष्ट अनुच्छेद लागू होगा और आवेदन तीन वर्ष के भीतर किया जाना आवश्यक होगा—संदर्भ हेतु आवेदन करने की तिथि से या संदर्भ हेतु आवेदन के बाद 90 दिन की अवधि समाप्त होने के बाद से...”

51. भूमि मालिकों के मामले को उत्तरदाता-संघ द्वारा उठाया गया बताया गया है। यह संघ 1970 में सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत बताया जाता है। तथापि, अभिलेख में यह नहीं है कि उसने समाहर्ता के समक्ष कोई संदर्भ आवेदन दायर किया था या नहीं।

52. यह भी महत्वपूर्ण है कि अधिकांश पंचाट 1972 से 1974 के बीच पारित हुए थे। कुछ पंचाट 1970, 1975, 1976, 1977 और 1978 में भी पारित हुए थे। राज्य ने यह बताने में अपनी असमर्थता व्यक्त की कि कितने लोगों ने विरोध सहित राशि स्वीकार की या कितने लोगों ने संदर्भ हेतु आवेदन किया।

53. हम यह मानकर चलेंगे कि अधिकांश पंचाट प्राप्तकर्ता गरीब और अशिक्षित थे तथा अपने अधिकारों से अनभिज्ञ थे। यह एक बात है कि कोई संघ, पहले उत्तरदाता की

तरह, उनका पक्ष उठाए, किन्तु यह कहना एक अलग बात होगी कि केवल उक्त कारण से ही विधि में निहित अनिवार्य प्रावधानों का पालन करना आवश्यक नहीं रह जाएगा।

54. अधिनियम में “हितबद्ध व्यक्ति” शब्द का प्रयोग किया गया है। धारा 3(बी) में दी गई “हितबद्ध व्यक्ति” अभिव्यक्ति की परिभाषा समावेशी है, यद्यपि यह पूर्णतः विस्तृत नहीं है। मूल रूप से इसमें “वे सभी व्यक्ति शामिल हैं जो इस अधिनियम के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण के कारण दिए जाने वाले प्रतिकर में हित का दावा करते हैं; तथा कोई व्यक्ति भूमि में हितबद्ध माना जाएगा यदि वह उस भूमि को प्रभावित करने वाले किसी सुखाधिकार में हित रखता हो”।

55. धारा 18 के प्रयोजन हेतु “हितबद्ध व्यक्ति” की अभिव्यक्ति को सीमित अर्थ दिया जा सकता है। राज्य एक हितबद्ध व्यक्ति नहीं है। जिस कंपनी या स्थानीय प्राधिकरण के लाभ हेतु भूमि अधिग्रहित की जाती है, वह धारा 50 के उपधारा (2) के प्रावधानों के मद्देनज़र संदर्भ हेतु आवेदन नहीं कर सकते हैं।

56. समाहर्ता एक वैधानिक प्राधिकारी है। अतः सामान्यतः उसे अपने अधिकारों का प्रयोग अधिनियम की सीमाओं के भीतर ही करना चाहिए, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायिक पुनरावलोकन के अंतर्गत उच्च न्यायालय उपयुक्त मामलों में अवैध रूप से रोके गए संदर्भ को निर्देशित करने या उसमें हस्तक्षेप करने की शक्ति से वंचित होगा, किन्तु ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण परिस्थितियों में तथा पर्याप्त आधार होने पर ही किया जाना चाहिए।

57. अतः संघ अपने सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हुए रिट याचिका दायर कर सकता था, किन्तु कड़ाई से देखें तो वह धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन दायर नहीं कर सकता था। ऐसे आवेदन हेतु निर्धारित परिसीमा का पालन अनिवार्य रूप से करना होता है। तथापि, इसमें किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता कि परिसीमा संबंधी विधि की व्याख्या कठोरता के साथ की जानी चाहिए।

58. कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम केएसआरटीसी कर्मचारी और श्रमिक संघ व एक अन्य [(1999) 2 एससीसी 687] संदर्भित किया गया है, जिसमें कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम के कर्मचारियों की सेवा-शर्तों से संबंधित एक मामले में, संघ को सरकार के आदेश तथा उसके परिणामस्वरूप निगम द्वारा जारी अधिसूचना को चुनौती देने का वाद दायर करने का अधिकार प्राप्त माना गया था, कहा:

“9. जहाँ तक संघ की वाद दायर करने का अधिकार का प्रश्न है, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि निगम ने स्वयं अपने आदेश दिनांक 24-12-1987 द्वारा संघ को उसके सदस्यों के लिए एकमात्र वार्ता प्रतिनिधि के रूप में मान्यता प्रदान की थी। निगम के दिनांक 24-12-1987 के कार्यालय ज्ञापन में यह उल्लेख किया गया था कि 11-12-1987 को आयोजित जनमत-संग्रह में निगम स्तर पर डाले गए कुल मतों में से 53.04% मत प्राप्त करने के कारण, निगम ने उत्तरदाता-महासंघ को निगम स्तर पर एकमात्र सामूहिक सौदेबाजी प्रतिनिधि के रूप में मान्यता प्रदान करने का निर्णय लिया। किन्तु यह मान्यता दिनांक 30-4-1987 की अधिसूचना में निर्धारित शर्तों के अधीन थी, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि संबंधित संघ को नियोक्ता के साथ सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार प्रदान किए जाने की तिथि से यह अधिकार चार वर्ष की अवधि तक प्रभावी रहेगा। यह भी पक्षकारों के बीच विवादित नहीं है कि बाद में आयोजित जनमत-संग्रह में भी उत्तरदाता महासंघ/संघ ने निगम स्तर पर डाले गए मतों में से 61.07% मत प्राप्त किए थे और निगम ने अपने दिनांक 16-7-1992 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा, 3-12-1991 की पूर्व अधिसूचना में निर्धारित शर्तों के अधीन, उस संघ को एकमात्र सामूहिक सौदेबाजी प्रतिनिधि के रूप में मान्यता जारी रखी। अतः यह निर्विवाद है कि 16-7-1996 तक उत्तरदाता महासंघ/संघ एक मान्यता प्राप्त संघ बना रहा। हमें यह समझ में नहीं आता कि ऐसा संघ दिनांक 10-9-1993 के सरकारी आदेश तथा उसके परिणामस्वरूप निगम द्वारा 21-9-1993 को जारी

अधिसूचना को चुनौती क्यों नहीं दे सकता। इन दोनों अवसरों पर उत्तरदाता संघ निर्विवाद रूप से कर्मचारियों का मान्यता प्राप्त संघ था और उसे 28-7-1988 के समझौते के अंतर्गत वेतन-पत्रक कटौती सुविधा का लाभ भी प्राप्त था.....”

59. भूमि अधिग्रहण के मामले में यह प्रश्न कि व्यक्तियों के समूह का प्रतिनिधित्व किसी संघ द्वारा किया जाए, उत्पन्न नहीं होता। अधिनियम में दावा प्रस्तुत करने के लिए आवेदन तथा आपत्तियाँ भू-स्वामियों द्वारा ही दायर किए जाने का प्रावधान है, न कि किसी संघ द्वारा और/या उसकी ओर से, और वह भी एक स्वतंत्र विधिक इकाई के रूप में।

60. भूमि के स्वामी को उचित मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार है। सीईएससीआर द्वारा 10 दिसंबर 2008 को घोषित मानवाधिकारों के अनुसार, उसे न्याय तक पहुँच का अधिकार प्राप्त है और उसे संदर्भ करने का अवसर दिया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को संदर्भ का अवसर तभी मिल सकता है जब उसे पंचाट की जानकारी दी गई हो।

61. हम यह भी नोट करते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष यह स्वीकार किया गया था कि जिन मामलों में समाहर्ता का पंचाट दावेदार को सूचित किया गया था और फिर भी समय के भीतर संदर्भ नहीं किया गया, वहाँ संदर्भ की प्रार्थना स्वीकार्य नहीं थी।

62. उच्च न्यायालय ने दावेदारों को चार श्रेणियों में विभाजित किया था। जहाँ तक दावेदारों की पहली श्रेणी का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उनके संदर्भ हेतु आवेदन संधार्य थे। किंतु जहाँ तक दावेदारों की दूसरी श्रेणी का संबंध है, उनके आवेदन परिसीमा से बाधित होने के कारण समाहर्ता द्वारा स्वीकार नहीं किए जा सकते थे, क्योंकि ऐसा करना उसके अधिकार-क्षेत्र से परे था। जहाँ तक तीसरी श्रेणी के दावेदारों का संबंध है, आवेदन प्रस्तुत करने की समय-सीमा निःसंदेह उस आदेश/निर्णय के संप्रेषण की तिथि से प्रारम्भ होगी। जहाँ तक दावेदारों की चौथी श्रेणी से संबंधित भूमिधारकों का प्रश्न है, वह कुछ महत्व का विषय है; अतः उस पर थोड़ी देर बाद विस्तार से विचार किया जाएगा।

63. अब हम कुछ पूर्व निर्णयों का उल्लेख करते हैं।

64. राजा हरीश चंद्र राज सिंह बनाम डिप्टी लैंड एक्विजिशन ऑफिसर और एक अन्य [(1962) 1 एससीआर 676] में इस न्यायालय ने धारा 12 का उल्लेख करते हुए कहा:

“यह महत्वपूर्ण है कि धारा यह अपेक्षा करती है कि समाहर्ता पंचाट बनाने के तुरंत बाद उसकी सूचना दे। यह प्रावधान धारा 18 के परंतुक में प्रयुक्त अभिव्यक्ति ‘समाहर्ता के पंचाट की तिथि से’ की व्याख्या के संबंध में हमारे द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन करता है। विधायिका ने आदेश/पंचाट के संप्रेषण को आवश्यक माना है, इसी कारण धारा 12(2) के अंतर्गत समाहर्ता पर इसकी सूचना देने का दायित्व आरोपित किया गया है यदि परंतुक के संबंधित उपबंध को इस वैधानिक आवश्यकता के आलोक में पढ़ा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि उक्त अभिव्यक्ति की शाब्दिक और यांत्रिक व्याख्या उचित नहीं होगी। यह वास्तव में एक अत्यन्त विचित्र परिणाम होगा कि धारा 12(2) के अधीन समाहर्ता द्वारा अपने वैधानिक दायित्व का निर्वहन न करने का प्रत्यक्ष प्रभाव यह हो कि संबंधित पक्ष का धारा 18 के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकार निष्प्रभावी हो जाए; ऐसा परिणाम विधायिका द्वारा किसी भी प्रकार से अभिप्रेत नहीं माना जा सकता।”

65. पंजाब राज्य बनाम एम.एस.टी. कैसर जहाँ बेगम और एक अन्य [(1964) 1 एससीआर 971] में भी इसी प्रकार कहा गया:

“पंचाट का ज्ञान केवल यह जानना नहीं है कि पंचाट पारित हुआ है। ज्ञान का संबंध पंचाट की आवश्यक सामग्री से होना चाहिए। यह ज्ञान वास्तविक या अनुमानित दोनों प्रकार का हो सकता है। यदि पंचाट धारा 12(2) के अंतर्गत किसी पक्ष को दिया गया है, तो यह माना जाएगा कि उसे पंचाट की सामग्री का ज्ञान हो गया, चाहे उसने उसे पढ़ा हो या नहीं। इसी प्रकार, जब कोई पक्षकार स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधि के माध्यम से उस समय न्यायालय में उपस्थित हो, जब समाहर्ता द्वारा पंचाट घोषित किया जाता है, तो यह उपधारणा की जाएगी कि उसे उस पुरस्कार की विषय-वस्तु

का ज्ञान है। अधिनियम की समग्र योजना को ध्यान में रखते हुए, हमारा मत है कि 'पंचाट का ज्ञान' से आशय पंचाट की आवश्यक एवं मूलभूत विषय-वस्तु के ज्ञान से है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर, हम यह निष्कर्ष निकालने में असमर्थ हैं कि दिनांक 24 दिसम्बर, 1954 की याचिका से यह सिद्ध होता है कि उत्तरदाताओं को पंचाट का ज्ञान था।”

66. अतः, उक्त निर्णय स्वयं इस सिद्धांत का प्राधिकार है कि रचनात्मक ज्ञान भी अधिनियम के उद्देश्य की पूर्ति करता है। यह प्रश्न कि किसी व्यक्ति को किसी दस्तावेज़ की सामग्री का वास्तविक या रचनात्मक ज्ञान था या नहीं, मूलतः एक तथ्य का प्रश्न है। इसका भार भू-स्वामी पर होगा कि वह सिद्ध करे कि उसे पंचाट की सामग्री का कोई ज्ञान नहीं था।

67. हम यह भी नोट कर सकते हैं कि जहाँ किसी संचार से किसी पक्ष के लिए कारण-कार्रवाई उत्पन्न होती है, वहाँ ऐसा संचार अनिवार्य प्रकृति का माना जाना चाहिए।

{देखें *पंजाब राज्य बनाम अमर सिंह हरिका* [एआईआर 1966 एससी 1313]}

68. परंतु *पंजाब राज्य बनाम खेमी राम* [(1969) 3 एससीसी 28 : एआईआर 1970 सी 214] में यह कहा गया:

“16. हमारे समक्ष उद्धृत अंतिम निर्णय पंजाब राज्य बनाम अमर सिंह हरिका का था, जहाँ विचार किए गए सवालों में से एक सवाल यह था कि क्या बर्खास्तगी का आदेश केवल उस तारीख से प्रभावी माना जा सकता है जब इसे संबंधित लोक सेवक को बताया या सूचित किया जाता है। तथ्य यह था कि आदेश 3 जून 1949 को पारित हुआ, और उसकी एक प्रति नीचे उल्लिखित अन्य 6 व्यक्तियों को भेजी गई, परंतु उसकी प्रति संबंधित कर्मचारी को नहीं भेजी गई और उन्हें इसके बारे में 28 मई, 1951 को ही पता चला, और वह भी किसी दूसरे अधिकारी के ज़रिए। इस आधार पर न्यायालय ने यह अस्वीकार किया कि केवल आदेश पारित हो जाने से वह प्रभावी हो जाता है, कि सिर्फ बर्खास्तगी का आदेश पारित कर देने से वह प्रभावी नहीं

होगा, जब तक कि उसे प्रकाशित न किया जाए और संबंधित अधिकारी को सूचित न किया जाए।।”

69. *भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम शिवाबाई और अन्य* [(1997) 9 एससीसी 710]

में इस न्यायालय ने कहा:

“.....परिसीमा धारा 18(2) के परंतुक के अनुसार नोटिस की तिथि से प्रारंभ होती है। पंचाट की तिथि तथा प्रतिकर प्राप्त करने की तिथि संयोगवश एक ही थी। इन परिस्थितियों में यह उपधारणा की जानी चाहिए कि वे उस दिन उपस्थित थे, जिस दिन पंचाट पारित किया गया था और उन्होंने प्रतिकर की राशि बिना किसी विरोध के प्राप्त कर ली थी। ऐसी स्थिति में वे किसी संदर्भ की मांग करने के अधिकारी नहीं हैं।”

70. *पुरुषोत्तमभाई मगनभाई पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य, उप-समाहर्ता मोडासा और एक अन्य के माध्यम से* [(2005) 7 एससीसी 431] में यह कहा गया:

“7. अतः इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 18(2)(बी) के उत्तरार्द्ध के अधीन परिसीमा की गणना उस तिथि को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए, जिस तिथि को दावेदारों को पंचाट की घोषणा का वास्तविक अथवा विधिक रूप से अनुमानित ज्ञान प्राप्त हुआ हो। किन्तु, यह सिद्धांत केवल उन मामलों में लागू होगा, जहाँ आवेदनकर्ता पंचाट पारित किए जाने के समय स्वयं उपस्थित न था और न ही उसका कोई प्रतिनिधि उपस्थित था, अथवा जहाँ उसे धारा 12(2) के अधीन कोई नोटिस तामील नहीं किया गया था। यह सिद्धांत उन मामलों में भी लागू होगा, जहाँ पंचाट के उच्चारण की तिथि पक्षकारों को पूर्व में सूचित कर दी गई हो और पंचाट उसी पूर्व-घोषित तिथि को घोषित किया गया हो, भले ही पक्षकार वास्तव में उस तिथि को उपस्थित न हों।”

71. राज्य ने एक अधिसूचना जारी कर समाहर्ता को धारा 18 के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने का निर्देश दिया। अतः, ऐसी अधिसूचना, को इस प्रकार माना जाएगा कि इससे भू-स्वामियों को अनुमानित ज्ञान प्राप्त हो गया। अतः भू-स्वामियों पर यह अनिवार्य था कि वे निर्धारित अवधि के भीतर उपयुक्त आवेदन दाखिल करें।

72. तथापि, राज्य ने लगभग 25.01.1983 को उक्त अधिसूचना का स्पष्टीकरण जारी करते हुए कहा कि 1981 की पूर्व अधिसूचना का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि अधिनियम द्वारा निर्धारित परिसीमा को पूर्णतः समाप्त मान लिया जाए। इसके पश्चात लगभग 2.12.1983 को रिट याचिका दायर की गई।

73. यह निर्विवाद है कि तमिलनाडु राज्य की 1981 की अधिसूचना के अनुसरण में भी कोई संदर्भ नहीं किया गया, क्योंकि अधिकांश पंचाट 1972 से 1974 के बीच पारित किए गए थे।

74. अतः रिट याचिका अत्यधिक विलंब के पश्चात दायर की गई।

75. *मिर्जा माजिद हुसैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य* [(1995) 2 एससीसी 422] में इस न्यायालय ने कहा:

“4. इसके पश्चात हमें यह देखना है कि क्या अपीलकर्ता समाहर्ता के आदेश की तिथि से 10 वर्ष से अधिक की अत्यधिक विलंब अवधि के बाद, अथवा कम-से-कम जिला न्यायाधीश के आदेश की तिथि से, उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में न्यायोचित था। उच्च न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किया था, न कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अंतर्गत। यदि इसे धारा 115 दीवानी प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पुनरीक्षण के रूप में भी माना जाए, तब भी उच्च न्यायालय का आदेश अधिकारिता संबंधी किसी त्रुटि अथवा अधिकारिता के प्रयोग में किसी महत्वपूर्ण अनियमितता से दूषित नहीं है। उच्च न्यायालय ने जिला न्यायाधीश के आदेश की तिथि से 5 वर्ष से अधिक तथा

भूमि अर्जन समाहर्ता के आदेश की तिथि से 10 वर्ष से अधिक के अत्यधिक विलंब को देखते हुए अपने विवेकाधीन अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करने से उचित रूप से इंकार किया है। इन परिस्थितियों में, हमारा यह मत है कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित हो।”

76. यह निर्विवाद है कि जिन्होंने बिना किसी विरोध के मुआवजा स्वीकार किया, धारा 31 के दूसरे परंतुक के अनुसार यह माना जाएगा कि उन्होंने किसी प्रकार का कोई आरक्षण नहीं रखा।

77. तथापि, मुद्रित प्रपत्रों में यह आपत्ति की गई थी कि सभी पंचाट आपत्तियों के अधीन हैं और भुगतान विरोध सहित स्वीकार किया जाएगा। धारा 9 के अंतर्गत नोटिस के प्रत्युत्तर में ऐसी आपत्ति दर्ज करना, हमारी राय में, धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन दायर करने के समान प्रभाव नहीं रखता।

78. धारा 18 की उपधारा (2) के परंतुक (बी) के अनुसार आपत्ति दाखिल करने की अधिकतम अवधि समाहर्ता के पंचाट की तिथि से छह माह निर्धारित है। अतः विधि भू-स्वामी पर यह दायित्व डालती है कि वह यह सतत निगरानी रखे कि उसकी आपत्ति पर क्या कार्यवाही हुई है।

79. विद्वान अधिवक्ता ने उद्देश्यपरक व्याख्या के सिद्धांत पर बल देते हुए शाब्दिक व्याख्या के स्थान पर उसका प्रयोग करने का आग्रह किया। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि किसी भी अधिनियम को संपूर्ण रूप से, फिर अध्यायवार, धारा-वार और अंततः शब्द-वार पढ़ा जाना चाहिए। इस हेतु अधिनियम की योजना को समझना आवश्यक है। यदि व्याख्या का सिद्धांत प्रावधानों की निष्पक्ष व्याख्या सुनिश्चित करता है, तो वह उद्देश्यपरक व्याख्या के मानदंडों को पूर्ण करता है।

80. *न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नुस्ली नेविल वाडिया* [(2008) 3 एससीसी 279] में, इस न्यायालय ने कहा:

“49. धारा 5 के अनुसार, प्रारंभिक दृष्टि में सम्पूर्ण भार नोटिस प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर डाला गया है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब एक बार जब संपदा अधिकारी धारा 4 के तहत अपनी राय बनाने के बाद, जैसा कि उसमें बताया गया है, नोटिस जारी कर देता है, तो नोटिस पाने वाले की यह ज़िम्मेदारी होती है कि वह न केवल इसका कारण बताए, बल्कि अपने पक्ष के समर्थन में सबूत भी पेश करे और मौखिक रूप से अपनी बात भी रखे। ऐसी परिस्थिति में शाब्दिक अर्थ ग्रहण करने से यह निष्कर्ष निकलेगा कि मकान-मालिक को न तो कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता है और न ही उसे कोई मौखिक निवेदन करने की आवश्यकता है। ऐसी शाब्दिक व्याख्या एक असंगत एवं विषम स्थिति उत्पन्न कर देगी, क्योंकि ऐसी दशा में मकान-मालिक को सुने जाने का अवसर ही नहीं मिल सकेगा। उसे न तो नोटिस-प्राप्त व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के प्रतिवाद में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति होगी और न ही उसे कोई तर्क प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। क्या विधि ऐसी स्थिति की परिकल्पना करती है? इसका उत्तर स्पष्ट रूप से ‘नहीं’ में होना चाहिए। जब कोई मकान-मालिक आवेदन प्रस्तुत करता है, तब उपयुक्त परिस्थितियों में उसे अपना मामला सिद्ध करने के लिए या तो प्रारंभिक स्तर पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार होना चाहिए अथवा नोटिस-प्राप्त व्यक्ति द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद साक्ष्य देने का अधिकार होना चाहिए। साथ ही, उसे नोटिस-प्राप्त व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का खंडन करने हेतु भी साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिलना चाहिए।”

81. *अध्यक्ष, इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम प्योर इंडस्ट्रियल कोक एंड केमिकल्स लिमिटेड* [(2007) 8 एससीसी 705] में, इस न्यायालय ने कहा:

“57. यह अधिनियम विनियामक प्रकृति का है, क्योंकि इसके कारण संपत्ति के स्वामी के अपनी भूमि का उपयोग करने तथा उसका विकास करने के अधिकार पर प्रतिबंध लग जाता है; अतः इसकी व्याख्या कठोर रूप से की जानी चाहिए। भूमि का स्वामी सामान्यतः अपनी भूमि का किसी भी उद्देश्य के लिए उपयोग करने अथवा उसका विकास करने का अधिकारी होता है, जब तक कि किसी अधिनियम या वैधानिक नियमों द्वारा उस पर कोई विनियमन न लगाया गया हो। ऐसे अधिनियम में निहित विनियमों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि भूमि-स्वामी के संपत्ति संबंधी अधिकार में न्यूनतम हस्तक्षेप हो। ये प्रतिबंध व्यापक लोकहित में लगाए जाते हैं। ऐसे प्रतिबंध निस्संदेह युक्तिसंगत होने चाहिए। (देखें: बैरम कुमावत बनाम भारत संघ; कृषि उत्पादन मंडी समिति बनाम पीलीभीत पंतनगर बीज लिमिटेड और यूनियन ऑफ इंडिया बनाम वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लिमिटेड।) वैधानिक योजना यह परिकल्पना करती है कि किसी व्यक्ति अथवा भूमि-स्वामी को सामान्यतः आरक्षण या नामनिर्देशन के माध्यम से उसकी भूमि के उपयोग से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

58. जैसा कि सभी जानते हैं, संपत्ति ज़ब्त करने वाले कानूनों की व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए।

82. हम यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि हमारा आशय यह विधि-नियम प्रतिपादित करना नहीं है कि पंचाट के प्रति आपत्ति या विरोध किसी विशेष रूप से निर्धारित अथवा स्पष्ट तरीके से ही किया जाना चाहिए। जब कोई व्यक्ति संदर्भ के लिए आवेदन प्रस्तुत करता है, तो उसमें पंचाट के प्रति उसका विरोध निहित माना जाता है, जैसा कि इस न्यायालय ने *अजीत सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य* में अभिनिर्धारित किया है:

“5. इन भूमियों की परस्पर निकटता को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा किया गया मूल्यांकन सही है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना 4 अक्टूबर 1978 को जारी की गई थी और प्रदर्श-आर/6 दिनांक 16 अगस्त 1978 का है, जो इस अधिसूचना की तिथि के अधिक निकट है, जबकि प्रदर्श-ए/6 दिनांक 14 जनवरी 1977 का है। जहाँ तक अपीलकर्ताओं द्वारा अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन दायर करने का प्रश्न है, वह स्वयं उनके आशय को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। अतः प्रतिकर स्वीकार कर लेने के बावजूद, समाहर्ता के अवार्ड के प्रति उनका विरोध निहित माना जाएगा। इस प्रकार, जिला न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को बढ़ा हुआ प्रतिकर देने से इंकार करके स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष त्रुटि की है।”

83. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने, तथापि, यह निवेदन किया कि ऐसी परिस्थितियों में इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए। इस उद्देश्य से विद्वान अधिवक्ता ने अनेक निर्णयों का संदर्भ दिया है। उनमें से कुछ का उल्लेख हम कर सकते हैं।

84. *सुप्रीम न्यायालय बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ और एक अन्य* [(1998) 4 एससीसी 409] में, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने *विनय चंद्र मिश्रा, संदर्भ* [(1995) 2 एससीसी 584] में दिए गए निर्णय पर विचार किया, जिसमें यह कहा गया था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय इस न्यायालय द्वारा उस विषय से संबंधित स्पष्ट वैधानिक उपबंधों की उपेक्षा कर दी गई थी। उस मामले में यह निर्णय दिया गया कि:

47. संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत इस न्यायालय की पूर्ण शक्तियाँ न्यायालय में अंतर्निहित हैं तथा वे उन शक्तियों की पूरक हैं, जो विभिन्न विधियों द्वारा न्यायालय को विशेष रूप से प्रदान की गई हैं, यद्यपि ये शक्तियाँ उन विधियों द्वारा

सीमित नहीं हैं। ये शक्तियाँ उन विधियों से स्वतंत्र रूप से भी अस्तित्व में रहती हैं ताकि पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय सुनिश्चित किया जा सके। ये अत्यंत व्यापक प्रकृति की हैं और पूरक शक्तियों के रूप में कार्य करती हैं। यह शक्ति विधियों से पृथक एवं स्वतंत्र अधिकारिता के रूप में विद्यमान है। यह नींव पर खड़ा है, और इसके प्रयोग का आधार भिन्न तथा संभवतः अधिक व्यापक हो सकता है, ताकि न्यायिक कार्यवाही की प्रक्रिया में होने वाले अन्याय को रोका जा सके तथा पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय किया जा सके। अतः यह पूर्ण अधिकारिता शक्ति का एक अवशिष्ट स्रोत है, जिसका उपयोग यह न्यायालय आवश्यकता पड़ने पर कर सकता है, जब ऐसा करना न्यायसंगत और समतापूर्ण हो, विशेष रूप से, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के पालन को सुनिश्चित करने तथा कानून के अनुसार न्याय का प्रशासन करते हुए पक्षकारों के मध्य पूर्ण न्याय करने के लिए इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह शक्ति अन्य सभी शक्तियों की एक अनिवार्य सहायक है तथा यह अधिकारिता संबंधी प्रतिबंधों से मुक्त है तथा न्यायालय के हाथों में एक मूल्यवान साधन के रूप में कार्य करती है, जिससे 'न्याय की धारा के अवरोध अथवा अवरुद्ध होने' को रोका जा सके...।”

85. एच.एम. केलोगिराव एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य [(1997) 7 एससीसी 722] में यह न्यायालय एक ऐसे मामले की सुनवाई कर रहा था जहाँ अपीलकर्ताओं ने पंचाट स्वीकार नहीं किया था और उसे चुनौती दी थी। उन्होंने रिट याचिका भी दायर की थी। उपर्युक्त असाधारण परिस्थितियों में, और विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उन्होंने रिट याचिकाएँ दायर कर रखी थीं, इस न्यायालय ने अपनी समतामूलक अधिकारिता तथा न्याय के हित में अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए उन्हें अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ प्राप्त करने हेतु आवेदन करने के लिए समय प्रदान किया था।

86. अतः उस मामले में संदर्भ के लिए आवश्यक आधारभूत तथ्य स्थापित हो चुका था। किन्तु यहाँ स्थिति वैसी नहीं है। जैसा कि पूर्व में इंगित किया जा चुका है, इन मामलों में न तो भूमिधरों द्वारा और न ही संघ द्वारा लम्बे समय तक कोई संदर्भ आवेदन प्रस्तुत किया गया। इसलिए, हमारे मत में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करने का कोई मामला स्थापित नहीं होता।

87. ओडिशा इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन बनाम सुपई मुंडा और अन्य [(2004) 12 एससीसी 306] मामले का भी अवलंब लिया गया है, जिसमें यह न्यायालय ऐसे मामले पर विचार कर रहा था, जहाँ राज्य प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित प्रतिकर ठोस एवं विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा समर्थित था। यह भी पाया गया कि दावेदार ने प्रतिकर की राशि की पर्याप्तता के संबंध में मौखिक विरोध व्यक्त किया था, जिसे बलपूर्वक उपायों का सहारा लेकर दबा दिया गया था। उपर्युक्त परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक का लाभ राज्य को उपलब्ध नहीं होगा, क्योंकि दावेदारों ने प्रतिकर की राशि दबाव एवं बाध्यता में प्राप्त की थी। उक्त परिस्थितियों में इस न्यायालय द्वारा संदर्भ की कार्यवाही आगे बढ़ाने का निर्देश संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए नहीं दिया गया था, बल्कि इस सिद्धांत के आधार पर दिया गया था कि बलपूर्वक या दबाव में प्राप्त किया गया निर्णय विधि की दृष्टि में कोई निर्णय नहीं होता और उसे उपेक्षित किया जा सकता है।”

88. भूमि अधिग्रहण समाहर्ता एक वैधानिक प्राधिकारी है। भूमि अधिग्रहण समाहर्ता के समक्ष कार्यवाही अर्ध-न्यायिक कार्यवाही होती है। ऐसे में पक्षकार अपने अधिकारों का परित्याग कर सकता है।

89. जया चंद्र महापात्रा बनाम भूमि अधिग्रहण अधिकारी, रायगढ़ा [(2005) 9 एससीसी 123] में, इस न्यायालय ने कहा:

8. विधि में, यदि पुनर्विलोकन आवेदन अन्यथा विधिसम्मत एवं संधार्य हों, तो उन्हें क्रमशः दायर करने पर कोई निषेध नहीं है। वर्तमान मामले में यह निर्विवाद है कि दीवानी न्यायालय ने अपीलकर्ता को बढ़े हुए प्रतिकर की राशि पर 30% की दर से देय सांत्वना राशि, तथा 1984 के संशोधन अधिनियम द्वारा परिकल्पित अतिरिक्त राशि और ब्याज का लाभ प्रदान नहीं किया था। अपीलकर्ता उक्त लाभों का अधिकारी था, जैसा कि अधिनियम की धारा 23(1ए), धारा 23(2) तथा धारा 28 में उपबंधित है। यह एक बात है कि धारा 23(1ए) के अंतर्गत अतिरिक्त राशि, धारा 28 के अंतर्गत वर्धित ब्याज तथा धारा 23(2) के अंतर्गत सांत्वना राशि प्रदान न किया जाना कोई लिपिकीय अथवा अंकगणितीय त्रुटि न माना जाए, जिसके संबंध में निष्पादन न्यायालय राहत प्रदान करने का अधिकारी न हो; किन्तु यह बिल्कुल दूसरी बात है कि इन लाभों का प्रदान किया जाना विधि की दृष्टि में असंभव माना जाए, जबकि संदर्भ न्यायालय इस संबंध में प्रस्तुत उपयुक्त आवेदन पर विचार करके यह पाता हो कि दावेदार को उपलब्ध वैधानिक लाभ प्रदान नहीं किए गए थे, और उसी आधार पर डिक्री में संशोधन करने का आदेश पारित करे। प्रथम प्रकार की स्थिति में निष्पादन न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार नहीं हो सकता, क्योंकि वह डिक्री के पीछे नहीं जा सकता, परन्तु विधि में ऐसा कोई निषेध नहीं है कि यदि अभिलेख के मुख पर स्पष्ट त्रुटि विद्यमान हो, तो संदर्भ न्यायालय दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1 के अधीन अपने पूर्व आदेश का पुनर्विलोकन न कर सके। संदर्भ न्यायालय से ऐसी अधिकारिता छीनी नहीं जा सकती। अधिनियम 68\1984 एक कल्याणकारी अधिनियम है; अतः उससे उत्पन्न लाभों से किसी दावेदार को सामान्यतः वंचित नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसके लिए कोई प्रबल एवं ठोस कारण न हों।”

90. भारत संघ बनाम प्रमोद गुप्ता (मृत) उनके कानूनी उत्तराधिकारियों और अन्य के माध्यम से [(2005) 12 एससीसी 1] में :

“104. अतः यह कहना सही नहीं होगा कि उक्त प्रावधान इतने अनिवार्य स्वरूप के हैं कि उनका परित्याग विधि में अस्वीकार्य है या ऐसा करना लोकहित के विरुद्ध होगा। भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 28 के अंतर्गत ब्याज प्रदान करना न्यायालय के विवेक पर निर्भर है। केवल उसमें निर्धारित ब्याज की दर ही अनिवार्य है। यद्यपि अधिनियम की धारा 34 प्रथम दृष्टया अनिवार्य प्रकृति की प्रतीत होती है, क्योंकि उसमें “करेगा” शब्द का प्रयोग किया गया है। तथापि, यह एक स्थापित विधिक सिद्धांत है कि न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग उस स्थिति में नहीं किया जा सकता, जहाँ पक्षकारों अथवा उनके अधिवक्ताओं द्वारा ब्याज का दावा करने के अधिकार का स्पष्ट रूप से परित्याग कर दिया गया हो। यहाँ तक कि किसी वैधानिक प्रावधान को भी त्यागा जा सकता है।

XXX

XXX

XXX

108. यह विवादित नहीं है कि यदि कोई व्यक्ति दूसरे पक्ष द्वारा किए गए अभ्यावेदन के आधार पर अपनी स्थिति में परिवर्तन कर लेता है, तो विबंध के सिद्धांत लागू होंगे और उसके परिणामस्वरूप अभ्यावेदन करने वाले व्यक्ति को बाद में उसके विपरीत कोई दलील उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी। *कृष्णा बहादुर बनाम पूमा थिएटर और अन्य* (2004) 8 एससीसी 229 मामले में, इस न्यायालय ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 233, कंडिका 9-10)

“9. परित्याग का सिद्धांत यद्यपि विबंध के सिद्धांत के समान होता है; फिर भी दोनों में अंतर यह है कि जहाँ विबंध एक वाद-हेतु नहीं है, बल्कि साक्ष्य का एक नियम है; वहीं परित्याग संविदात्मक होता है और यह एक वाद-हेतु भी बन सकता है; यह पक्षकारों के बीच एक समझौता होता है और कोई पक्ष

अपने अधिकारों को पूर्ण जानकारी के साथ किसी प्रतिफल के बदले प्रयोग न करने के लिए सहमत हो जाता है।

10. किसी अधिकार का परित्याग उस पक्ष द्वारा किया जा सकता है, जिसके लाभ के लिए किसी विधि के अंतर्गत कुछ आवश्यकताएँ या शर्तें निर्धारित की गई हों, बशर्ते कि उसमें कोई लोकहित शामिल न हो। जब भी परित्याग का दावा किया जाता है, तो यह दावा करने वाले पक्ष को यह सिद्ध करना होता है कि किसी समझौते के माध्यम से, प्रतिफल के बदले अधिकार के परित्याग का समझौता अस्तित्व में आया था। हालांकि, वैधानिक अधिकार का परित्याग व्यक्ति अपने आचरण से भी कर सकता है।

[यह भी देखें: *विजय कॉटन एंड ऑयल मिल्स लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य* (1969) 2 एससीआर 60, एससीआर पृष्ठ 63 पर]।

109. पुनः हाल ही में कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम संगप्पा धावप्पा बिरादर और अन्य (2005) 4 एससीसी 264 में, इस न्यायालय ने यह सिद्धांत लागू किया कि *संमती से पारित पंचाट* के संदर्भ में *विबंध* का सिद्धांत लागू होता है, और यह माना गया कि एक बार जब सहमति से पंचाट पारित हो जाता है, तो दावेदार को भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ हेतु आवेदन करने से रोका जाता है।”

91. *तमिलनाडु इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम स्टेटस स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड* [(2008) 7 एससीसी 353] में इस न्यायालय ने कहा:

“34. अधिसूचनाओं की अवैधता के आधार पर उनकी वैधता का प्रश्न उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया ही नहीं गया था। इसलिए हम उस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकते। यदि ऐसा है, तो अतः श्री पारासरण के इस तर्क से सहमत होना कठिन है कि हमें अधिसूचनाओं की ऐसी व्याख्या करने का प्रयास करना चाहिए जिससे कोई

अविवेकपूर्ण या अनुचित परिणाम उत्पन्न न हो। किसी विधि को असंवैधानिक घोषित करने के लिए आधारभूत तथ्यों का होना आवश्यक है। (देखें *सीमा सिल्क एंड साडीज़ बनाम प्रवर्तन निदेशालय* 11)। ऐसे आधार उठाए जाने चाहिए। इनके अभाव में हम संविधानिकता के प्रश्न में प्रवेश नहीं कर सकते। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने सही या गलत यह कहा कि प्रतिज्ञात्मक *विबंध* का सिद्धांत लागू नहीं होता। यह निर्विवाद है कि यह सिद्धांत किसी विधि के संदर्भ में भी लागू हो सकता है, जैसा कि इस न्यायालय ने *महाबीर वेजिटेबल ऑयल्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य* 12, *ए.पी. स्टील री-रोलिंग मिल लिमिटेड* 9, *पवन एलॉयज एंड कास्टिंग (प्रा.) लिमिटेड बनाम यू.पी. एसईबी* 13 और *सदर्न पेट्रोकेमिकल इंडस्ट्रीज कंपनी लिमिटेड बनाम इलेक्ट्रिसिटी इंस्पेक्टर & ईटीआईओ* 14 आदि मामलों में कहा है।

92. तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड द्वारा दायर अपीलें, हालांकि, एक अलग स्थिति पर आधारित हैं। वहाँ उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका स्वीकार कर ली थी। इसके अनुसरण में या उसके प्रभाव में संदर्भ किया गया था। एक तथ्यात्मक निष्कर्ष भी दर्ज किया गया था। दीवानी न्यायालय को संदर्भ देने की प्रार्थना भी की गई थी। भूमि अधिग्रहण समाहर्ता ने उन्हें आश्वासन दिया था कि संदर्भ किया जाएगा। परंतु यह वादा पूरा नहीं किया गया। ऊपर बताई गई स्थिति में, रिट याचिका दायर की गई।

93. एकल न्यायाधीश के निर्णय का अनुपालन किया गया था और तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड ने बिना किसी आपत्ति के कार्यवाही में भाग लिया, अतः उन्हें यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि कार्यवाही अवैध थी। उन्होंने न केवल कार्यवाही में भाग लिया बल्कि मुआवजे की मात्रा से संबंधित साक्ष्य के संबंध में आपत्ति भी उठाई और संदर्भ न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील भी की। चूंकि ये कार्यवाहियाँ अंतिम रूप प्राप्त कर चुकी थीं, इसलिए उनके द्वारा दायर रिट अपीलों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था।

94. इस प्रकार के मामले में, जब राज्य और/या अपीलकर्ता द्वारा कोई सामग्री अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं की गई है, तो हम यह मान सकते हैं कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी अधिनियम की धारा 3(सी) के अर्थ में समाहर्ता है। अतः वह अपने द्वारा दिए गए वचन से बाध्य था।

95. उपर्युक्त परिस्थिति में यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ किसी उच्च प्राधिकारी द्वारा किसी वैधानिक प्राधिकारी को उसके अधिकार क्षेत्र का प्रयोग एक निश्चित तरीके से करने के लिए कहा गया हो। अधिनियम में किसी प्रकार के विरोध का कोई निर्धारित स्वरूप निर्धारित नहीं किया गया है। न ही आवेदन का कोई निर्धारित लिखित प्रारूप दिया गया है। किसी विशेष मामले में, जब विधि के उद्देश्य और आशय को ध्यान में रखा जाए, तो समाहर्ता, जो एक वैधानिक प्राधिकारी है और जिसे संदर्भ करने का अधिकार प्राप्त है, उस अधिकार का परित्याग कर सकता है। हम इसे एक अन्य दृष्टिकोण से भी देख सकते हैं। यदि दावेदारों के अनुरोध पर संदर्भ किया गया होता, तो क्या उसे केवल इसलिए पूर्णतः अवैध या अधिकार क्षेत्र के बिना माना जा सकता था कि मुआवजे की राशि के संबंध में किया गया विरोध मौखिक था और लिखित नहीं था? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होना चाहिए। विरोध का रूप, तरीका और ढंग प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं। विधि यह नहीं कहती कि कोई कार्य केवल एक विशेष तरीके से ही किया जाएगा।

96. श्री कृष्णमूर्ति का यह तर्क कि यह सिद्धांत कि जहाँ विधि किसी कार्य को एक निर्धारित तरीके से करने को कहती है, वहाँ उसे उसी तरीके से या बिल्कुल नहीं किया जा सकता तब लागू होता है जब वैधानिक प्राधिकारी को विधि के अनुसार कार्य करना हो, लेकिन यह किसी वादकारी पर लागू नहीं होता। यह सर्वविदित है कि प्रक्रिया न्याय की सहायक होती है। किसी मौलिक अधिकार को प्रदान करने वाला मौलिक प्रावधान अथवा किसी मौलिक अधिकार को प्रदान करने वाला वैधानिक प्रावधान, मामले के प्रक्रियात्मक पक्ष पर प्रधानता रखेगा। अतः ऐसी स्थिति में, प्रतिज्ञात्मक विबंध के सिद्धांतों को ध्यान में रखते

हुए, भूमि अर्जन समाहर्ता को अपने द्वारा किए गए वचन को पूरा करने के लिए बाध्य माना जा सकता था।

97. *नगर पालिका निगम बनाम कृषि उपज मंडी समिति एवं अन्य* (2008 एआईआर एससीडब्ल्यू 7114]) में इस न्यायालय ने कहा:

“8. किसी परन्तुक का सामान्य कार्य यह होता है कि वह अधिनियम के मुख्य प्रावधान के दायरे से किसी बात को अपवाद के रूप में बाहर कर दे, अथवा मुख्य प्रावधान में निहित किसी बात को सीमित, योग्य या संशोधित कर दे, जो परन्तुक के अभाव में उस प्रावधान के दायरे में आती। जैसा कि *मलिन्स बनाम सर्वे के कोषाध्यक्ष* 1880 (5) क्यूबीडी 170 (1880) में कहा गया था (जिसे *शाह भोजराज कुवेरजी ऑयल मिल्स एंड गिनिंग फैक्ट्री बनाम सुभाष चंद्र योगराज सिन्हा* (एआईआर 1961 एससी 1596) तथा *कलकत्ता ट्रामवेज कंपनी लिमिटेड बनाम कलकत्ता कॉर्पोरेशन* (एआईआर 1965 एससी 1728) में संदर्भित किया गया); जब किसी धारा में परन्तुक पाया जाता है, तो सामान्य धारणा यह होती है कि यदि वह परन्तुक न होता, तो मुख्य प्रावधान उस परन्तुक के विषय को अपने भीतर शामिल कर लेता। परन्तुक का उचित कार्य यह है कि वह उन मामलों को अलग करे और उन पर लागू हो, जो अन्यथा मुख्य अधिनियम की सामान्य भाषा के अंतर्गत आ जाते। इसका प्रभाव केवल उन्हीं मामलों तक सीमित रहता है। यह उस पूर्ववर्ती प्रावधान के पृष्ठ 4544 का एक सीमांकन है, जिसे अत्यधिक सामान्य शब्दों में व्यक्त किया गया है, जिससे वह पूर्णतः सटीक नहीं रह जाता। सामान्य नियम के अनुसार, परन्तुक किसी प्रावधान में जोड़कर उसे सीमित करने या अपवाद बनाने के लिए होता है, और सामान्यतः इसे किसी सामान्य नियम के रूप में नहीं पढ़ा जाता। जैसा कि लॉर्ड वॉटसन ने *वेस्ट डर्बी यूनियन बनाम मेट्रोपॉलिटन लाइफ एश्योरेंस कंपनी* 1897 एसी 647, (एचएल) में कहा था कि “यदि अधिनियम के मुख्य प्रावधान की भाषा में वे उपबंध सम्मिलित

नहीं हैं, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे उसमें निहित हैं, तो उन उपबंधों को आप किसी परन्तुक से निहितार्थ के आधार पर नहीं निकाल सकते।” सामान्यतः परन्तुक उस प्रावधान से आगे नहीं जाता जिससे वह परन्तुक जुड़ा होता है। यह केवल उसी मुख्य प्रावधान का अपवाद बनाता है, जिससे वह परन्तुक जुड़ा होता है किसी अन्य का नहीं। (देखें: ए.एन. सहगल और अन्य बनाम राजे राम शिवराम और अन्य (एआईआर 1991 एससी 1406), त्रिभोवनदास हरिभाई तम्बोली बनाम गुजरात राजस्व न्यायाधिकरण और अन्य (एआईआर 1991 एससी 1538), तथा केरल राज्य आवास बोर्ड और अन्य बनाम रामाप्रिया होटल्स (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य (1994 (5) एससीसी 672))।

98. उपर्युक्त कारणों के आधार पर, मेसर्स भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड द्वारा दायर अपील स्वीकार की जाती है तथा लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है और वहीं तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड के प्रबंध निदेशक द्वारा दायर अपीलें खारिज की जाती हैं तथा उन पर लागत लगाई जाती है। अधिवक्ता शुल्क प्रत्येक मामले में रु.25,000/- निर्धारित किया जाता है।

अपील का निस्तारण किया गया।

के.के.टी.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।